दुर्भाग्य चक्र

लेखक :
रवीन्द्रनाथ ठाकुर

प्र भा त प्र का श न

प्रकाशक :

प्रभात प्रकाशन,

मथुरा

★

१९५७ ई०

★

★

अनुवादक :

राजेश दीक्षित

★

मूल्य :

दो रुपया

★

मुद्रक :

सुभाष प्रिंटिंग प्रेस,

तिलक द्वार,

मथुरा

दुर्भाग्य चक्र

कथा-सूची

—०—
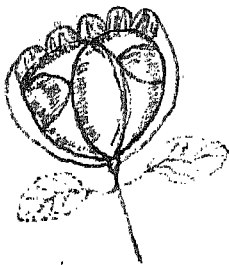
पोस्ट मास्टर

पोस्ट मास्टर को नौकरी लगते ही ओलापुर गांव में जाना पड़ा। गांव साधारण सा ही है। पास ही एक नील की कोठी है। उस कोठी के साहब ने बड़े प्रयत्नों से यह नया पोस्ट आफिस स्थापित कराया है।

हमारे पोस्ट मास्टर का बचपन कलकत्ते में बीता है। उनकी दशा एक छोटे से गाँव में जाकर बिना पानी की मछली के समान हो गई। उनका आफिस एक अँधेरी कोठरी में है, पास ही एक गंदा तालाब है तथा चारों ओर जंगल। कोठी में जो मुलाजिम हैं, उन्हें अवकाश ही नहीं कि किसी से मिलें जुलें, और फिर वे भले आदमियों से मिलने-जुलने योग्य भी नहीं हैं। विशेष कर कलकत्ते के लड़के तो भली प्रकार मिलना-जुलना जानते ही नहीं। अपरिचित स्थान में जाकर वे तो उद्धत हो जाते हैं या शान्त बने रहते हैं। यही कारण है कि पोस्ट मास्टर का गाँव के लोगों से मेल-जोल न हो सका। इधर वहाँ काम-काज भी कोई अधिक नहीं है, जिसमें वे व्यस्त रहें। वे कभी-कभी थोड़ी बहुत कविता लिखने का प्रयत्न करते हैं, और उसमें ऐसा भाव व्यक्त करते हैं मानो पूरे दिन पेड़-पत्तियों का कंपन और आकाश के बादलों को देखकर ही जीवन बड़े सुख से बीता जा रहा हो। परन्तु भगवान ही जानते होंगे कि यदि आलिफ लैला का कोई दैत्य आकर एक ही रात में इन डाल

और पत्तियों सहित पेड़ों को काट कर बड़ी सड़क बना दे तथा उनके दोनों ओर एक ही लाइन में बड़े-बड़े पक्के मकान खड़े करके आकाश के बादलों को दृष्टि से ओझल कर दे, तो बिचारे इन अधमरे मैले आदमियों के लड़कों को पुनः नवजीवन मिल जाय।

पोस्ट मास्टर का वेतन बहुत थोड़ा है। अतः स्वयम् भोजन बना कर खाना पड़ता है, तथा गांव की एक बिना माता-पिता की अनाथ बालिका उनका काम काज कर देती है। उसको वे थोड़ा बहुत खाने को दे दिया करते हैं। उस बालिका का नाम रतन है। उमर १२-१३ वर्ष की होगी। शादी की कोई खास आशा दिखाई नहीं देती।

साँयकाल को जब गाँव के ग्वालों के घरों से घना धुँआ उठता, चारों ओर से झींगुर बोलने लगते, कुछ दूरी पर गाँव के नशेबाज गवैयों की चौकड़ी ढोलक-मजीरा बजाकर ऊँचे स्वर से गाना शुरू कर देती तथा जब कवि के हृदय में भी पेड़ों की कँपकंपी देखकर मामूली हृत-कप उपस्थित होता, तब उस अँधेरी कोठरी में एक कोने में, दिया जलाकर पोस्ट मास्टर पुकारते—रतन। रतन द्वार पर बैठी हुई मानो इसी पुकार की प्रतीक्षा करती रहती; परन्तु एक बार बुलाने पर ही वह भीतर न जाती। कहती—"बाबूजी क्या है, क्यों बुलाते हो ?"

पोस्ट मास्टर कहते—"तू क्या कर रही है ?"

रतन कहती—"अभी चूल्हा सुलगाने जाऊँगी।"

कुछ ही देर बाद रतन दोनों गाल फुलाकर, चिलम पर फूँक मारती हुई, भीतर आयी। पोस्ट मास्टर उसके हाथ से हुक्का लेकर झट पूछ बैठते—"रतन ! क्या तुझे अपनी माँ की याद है ?" उसकी माँ की बड़ी लम्बी कहानी है। कुछ उसे याद है, कुछ भूल गई। माँ से अधिक उसे बाप प्यार करता था। उसे बाप की

थोड़ी-थोड़ी याद है। बाप शाम को मेहनत-मजदूरी करके घर आता था। उन्हीं में से कोई-कोई संध्या उसके हृदय-पटल पर चित्र की भांति अंकित है। रतन किस्सा सुनाते-सुनाते पोस्ट मास्टर के पैरों के पास जमीन पर बैठ जाती। उसे याद आती—उसके एक छोटा भाई भी था। बहुत दिनों की बात है, बरसात के दिनों में एक दिन दोनों भाई-बहन छोटी तलैया के किनारे पेड़ की डाली की बंशी बनाकर भूँठ मूँठ को मछली पकड़ना खेला करते थे। उसे अनेकों बड़ी-बड़ी घटनाओं में से केवल यही एक बात याद आती है। जब कभी-कभी इसी प्रकार बातचीत करते-करते बहुत रात हो जाती, तब आलस के कारण पोस्ट मास्टर की रसोई बनाने को उसका दिल न करता। सबेरे की बासी दाल-तरकारी बच रहती थी। रतन जल्दी से चूल्हा सुलगाकर दो-चार रोटी सेंक लाती, दोनों का उसी से पेट भर जाता।

कभी-कभी शाम को पोस्ट मास्टर भी उस कोठरी के आंगन में रक्खी हुई आफिस की चौकी पर बैठकर अपने घर की बात छेड़ते। छोटे भाईयों की, मां तथा महेन्द्र की, और इस सूने घर में बैठकर जिनके लिये हृदय व्याकुल हो उठता, उनकी बातें कहते। जो बातें हर समय मन में उठतीं रहतीं और जो नील की कोठी के कर्मचारियों से भी नहीं कही जा सकती थीं, वही सब बातें वे एक अशिक्षित और मामूली लड़की से बिना किसी हिचकिचाहट के कहते चले जाते। अन्त में ऐसा होता गया कि लड़की बातचीत करते समय उनके घर वालों को माँ, बहिन, भैया, कहने लगी। यहाँ तक कि उसने अपने छोटे से हृदय-पटल पर उनकी काल्पनिक मूर्त्ति भी बना ली।

एक दिन वर्षा ऋतु के बादलों से मुक्त दोपहर को गरम-गरम हवा चल रही थी। पेड़ पौधों तथा धूप से भीगी हुई

घास में से एक प्रकार की महक निकल रही थी। ऐसा लगता था, जैसे थकित पृथ्वी की गरम श्वासें शरीर पर आकर टकरा रही हों तथा न जाने कहाँ की एक जिद्दिन चिड़िया इस भरी दुपहरी में प्रकृति के दरबार में अपनी तमाम शिकायतें बहुत ही करुण-स्वर में बार-बार पेश कर रही हो। पोस्ट मास्टर के पास इस समय कोई काम न था। उस दिन वर्षा से धुले हुए पेड़-पौधे उनके चिकने कोमल पत्तों के हिलोरे तथा पराजित वर्षा के भवनावशिष्ट धूप से चमकते हुये स्तूपों के समान श्वेत मेघ वास्तव में ही देखने योग्य थे। पोस्ट मास्टर उन्हें देख-देखकर सोच रहे थे—काश, इस समय पास में कोई अपना होता। हृदय के साथ सटी हुई कोई स्नेह-पुतली मानव-मूर्त्ति होती। धीरे-धीरे ज्ञात हुआ कि वही चिड़िया उसी एक ही बात को बार-बार कह रही है और पेड़ों की छाया में डूबे हुए, इस सुनसान दोपहर के पल्लव, का मरमर का अर्थ भी कुछ-कुछ वैसा ही है। कोई विश्वास नहीं करता तथा जानने नहीं पाता, परन्तु छोटे से गाँव के मामूली वेतन वाले सब पोस्ट मास्टर के हृदय में, इस गहरी शान्त दुपहरी में छुट्टी के दिन, ऐसा ही एक भाव उठा करता है।

पोस्ट मास्टर ने एक दीर्घ निःश्वास छोड़ते हुये पुकारा—"रतन!" उस समय रतन अमरूद के पेड़ के नीचे बैठी कच्चा अमरूद खा रही थी। वह मालिक की आवाज सुनकर तुरन्त दौड़ी हुई आई और हाँपती हुई बोली—"बाबू जी! बुला रहे हो?" "तुझे मैं थोड़ा-थोड़ा पढ़ना सिखाऊँगा" पोस्ट मास्टर ने कहा। इसके पश्चात् दोपहरी भर उसे वे अ, आ, इ, ई सिखाते रहे। इस प्रकार थोड़े ही दिनों में उसे बहुत-कुछ पढ़ा दिया।

सावन का महीना है, वर्षा की कोई सीमा नहीं। नहर, बम्बा, ताल-तलैया, नदी-नाले सब के सब पानी से भर गये। रात-

दिन मेढकों की टर–टर और वर्षा की रिमझिम सुनाई पड़ती है। हाट के लिये नाव पर जाना पड़ता है।

एक दिन बादल सबेरे से ही छा रहे थे। पोस्ट मास्टर की छात्रा दरवाजे पर बहुत देर से बैठी राह देख रही थी। परन्तु नित्य की भाँति नियमित पुकार न सुनने के कारण अन्त में स्वयम् की अपनी किताब लेकर धीरे-धीरे घर के भीतर पहुँची। देखा—पोस्ट मास्टर अपनी खाट पर पड़े हैं। उसने यह सोचकर धीरे से बाहर निकलना चाहा कि वे आराम कर रहे होंगे। सहसा सुनाई दिया—"रतन !" वह एक दम पीछे लौट कर बोली—"बाबूजी ! सो रहे थे न ?" पोस्ट मास्टर ने करुण स्वर में कहा—"रतन ! आज तबीयत अच्छी मालूम नहीं देती। मेरे माथे पर हाथ रखकर तो देख।"

इस निर्जन-प्रवास में घनी वर्षा में लोग-पीड़ित शरीर को जब कुछ सेवा-पाने की इच्छा होती है, तब मस्तक पर चूड़ियों वाले कोमल हाथों की स्पर्श का याद आ ही जाती है। ऐसे समय रोग की पीड़ा में ऐसा सोचने को मन करता है कि स्नेहमयी नारी के रूप में माँ अथवा जीजी पास बैठी हैं। प्रवासी की यहाँ भी मन की अभिलाषा व्यर्थ न गई। बालिका रतन अब बालिका न रही। उसी क्षण उसने जननी का पद ले लिया। वैद्य को बुला लाई, नियत समय पर दवा खिलाई, सारी रात सिरहाने बैठी जागती रही, स्वयं ही पथ्य बना लाई और अनेकों बार पूछती रही "बाबू जी ! कुछ आराम मालूम पड़ता है ?"

पोस्टमास्टर रोग शैया से कमजोर होकर उठे। मन में तय कर लिया था, यहां से किसी भी तरह बदली करानी ही है। यहां स्वास्थ ठीक नहीं रहता, आबहवा ठीक नहीं—इत्यादि लिखकर

उसी समय कलकत्ता के अफसर को बदली के लिये अर्जी भेज दी।

रतन रोगी की सेवा से अवकाश पाकर फिर दरवाजे के बाहर अपनी जगह पर जा बैठी, परन्तु अब उसे पहिले की तरह किसी ने नहीं बुलाया। वह बीच-बीच में झांक कर देखती-पोस्टमास्टर अनमने होकर चौकी पर बैठे हैं या खाट पर पड़े हैं। जब बुलाट की प्रतीक्षा में रतन बाहर बैठी रहती, तब वे अधीरता से अपनी अर्जी के जवाब की परीक्षा करते रहते। बालिका ने दरवाजे पर बैठे-बैठे अपना पुराना पाठ घोंटना शुरू किया। उसे डर था, कहीं अचानक न पुकार बैठे और तब वह भूल गई तो। अन्त में, एक सप्ताह पश्चात् एक दिन शाम को पुकार हुई। रतन घबराहट के साथ भीतर गई, बोली—"बाबूजी मुझे बुला रहे थे ?"

"रतन ! मैं कल चला जाऊँगा।"

"कहाँ चले जाओगे, बाबूजी ?"

"घर जाऊँगा।"

"फिर कब आओगे ?"

"अब नहीं आऊँगा।"

रतन ने फिर कोई बात नहीं पूछी। पोस्टमास्टर ने स्वयं ही उससे कहा—"मैंने अपने तबादिले के लिये अर्जी दी थी, अर्जी मंजूर नहीं हुई। इसलिये मैं काम छोड़कर घर चला जाऊँगा।"

दोनों बहुत देर तक चुप बैठे रहे। एक कोने में दिया टिमटिमाता रहा तथा एक स्थान पर घर की पुरानी छत चू कर, एक मिट्टी के सरबे में टप्-टप् बरसात का पानी टपकता रहा।

रतन कुछ देर बाद धीरे से उठकर रसोई घर में रोटी बनाने चली गई। आज उसमें और दिन की भाँति उतनी फुर्ती

नहीं थी । शायद उसे बीच-बीच में बहुत-सी चिन्तायें आ घेरती थीं ।

पोस्टमास्टर जब खाकर उठे तो रतन अचानक पूछ बैठी—"बाबूजी ! मुझे अपने घर ले चलोगे ?

पोस्टमास्टर ने हँसकर कहा–"यह कैसे हो सकता है ?"

बात क्या है, यह उन्होंने समझाने की आवश्यकता न समझी । रातभर स्वप्न में और जागते में, रतन के कान मे पोस्ट-मास्टर की वही ध्वनि गूंजती रही–"यह कैसे हो सकता है ?"

पोस्टमास्टर ने प्रातः उठकर देखा कि उनके नहाने के लिये पानी तैयार है । वे कलकत्ते की आदत के अनुसार बाल्टी में रक्खे हुये पानी से नहाते थे । किसी कारण रतन उनसे यह न पूछ सकी कि वे किस समय आयेंगे । रतन ने इस ख्याल से कि कहीं सबेरे की आवश्यकता न पड़े नदी से पानी ला रक्खा था । नहाने के पश्चात् रतन की पुकार हुई । वह चुपचाप भीतर पहुंची तथा आज्ञा पाने की आशा से उसने एक बार मालिक के मुँह की ओर देखा । मालिक ने कहा—"रतन मेरे स्थान पर जो बाबू आयेंगे, वे तुझे मेरे ही समान रक्खेंगे । मैं जा रहा हूं, इसके लिये तू कोई चिन्ता मत करना । "ये बातें अत्यन्त स्नेह और दयार्द्र हृदय से निकली थीं, इसमें सन्देह नहीं पर, नारी के हृदय को कौन समझे ? रतन ने मालिक के अनेक तिरस्कार अनेक प्रकार सुने हैं, पर आज की मीठी-मीठी बातें उसे सहन न हुईं । वह एक साथ सिसक कर बोली—"नहीं, नहीं, मैं यहाँ नहीं रहना चाहती, तुम किसी से भी कुछ न कहे जाना ।"

पोस्ट मास्टर ने रतन का कभी ऐसा व्यवहार न देखा था, इसी से वह आश्चर्य चकित रह गए ।

नया पोस्ट मास्टर आया। उसको सारा चार्ज सौंप कर पुराने पोस्ट मास्टर चलने की तैयारी करने लगे। उन्होंने चलते समय रतन को बुलाकर कहा "रतन ! मैं तुझे कभी कुछ न दे सका। आज जाते समय तुझे कुछ दिये जाता हूं, इससे तेरी कुछ दिनों की गुजर चल जायगी।"

अपने रास्ते के खर्च के लिये थोड़े से रुपये निकाल कर, वेतन के जियने रुपये मिले थे, उन्हें वे जेब से निकाल कर देने लगे। तब रतन ने जमीन पर लेट कर, उनके पैर पकड़ते हुए कहा—"बाबूजी ! मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूं, मुझे कुछ मत दो। मेरे लिये किसी को चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं वह इतना कह कर वहाँ से भाग गई।

पोस्ट मास्टर एक गहरी साँस लेकर, हाथ में बेग लटकाये कन्धे पर छतरी रखे मजदूर के सर पर नीले व सफेद रंग की लकीरों से रंगा हुआ टीन का बक्स रखवाकर, धीरे-धीरे घाट की ओर चल दिये।

वे नाव पर चढ़ गये और नाव चल दी। नदी वर्षा के पानी से दूर तक फैली हुई थी। जब वह आवेग से निकलते हुए पृथ्वी के आँसुओं की भाँति चारों ओर चमकने लगी, तब हृदय के भीतर वे एक गहरी वेदना का अनुभव करने लगे। उनके हृदय को एक साधारण गांव की लड़की का करुण चेहरा तथा उससे भी करुण आँसू भरी आँखें, मानो एक विश्वव्यापी वृहत् अव्यक्त मर्म व्यथा बनकर, उनके हृदय को व्यथित करने लगी। एक बार उनकी इच्छा हुई कि लौट चलें तथा दुनियाँ की गोद से छिटकी हुई उस अनाथ लड़की को साथ लेते चलें, परन्तु उस समय तक तिरपाल में हवा भर चुकी थी, वर्षा का स्त्रोत तेजी से चल रहा था नाव गाँव पार कर चुकी थी और नदी-तट का श्मशान दिखाई दे

रहा था । तब नदी के प्रवाह में बहते हुए पथिक के व्यथित-हृदय में इस तत्व का उदय हो रहा था कि जीवन में न जाने ऐसे कितने विच्छेद, कितनी मौतें आती रहेंगी, संसार में कौन किसका है ? लौटने से लाभ ?

परन्तु रतन के हृदय में किसी भी तत्व का उदय नहीं हुआ। वह पोस्ट आफिस के चारों ओर आँसू बहाती हुई घूम रही थी। शायद उसके मन में बाबू के लौटने की क्षीण आशा जाग रही थी तथा इस बन्धन में पड़ कर वह बेचारी कहीं दूर नहीं जा सकती थी। हायरे, बुद्धिहीन मानव हृदय ! तेरी भ्रांति किसी प्रकार मिटती नहीं। युक्ति शास्त्र का विधान बहुत देर से मस्तिष्क में घुसता है। वह प्रबल एवं साक्षात् प्रमाणों का विश्वास न कर, झूठी आशाओं को दोनों भुजाओं से बाँध कर, जी जान से छाती से लगाता है और अन्त में एक दिन जब वह आशा सम्पूर्ण नाड़ियों को काट कर, हृदय का खून चूस कर, लुप्त हो जाती है, तब होश आता है। परन्तु आश्चर्य यह है कि फिर तुरन्त ही दूसरे भ्रांत-जाल में फँसने के लिये चित्त व्याकुल हो उठता है।

सम्पत्ति दान

वृन्दावन ने गुस्से में आकर अपने पिता से कहा—"लो मैं अभी जा रहा हूँ।"

पिता यज्ञनाथ कुण्ड ने कहा—"नालायक, नीच कहीं का। बचपन से अबतक तुझे पालपोस कर इतना बड़ा किया। पहले तू इस कर्ज को चुका दे, तब तेजी दिखाना।"

यज्ञनाथ के घर के रहन-सहन को देखते हुये तो यह नहीं कहा जा सकता कि खर्च अधिक हुआ होगा। प्राचीन समय में साधू-महात्मा लोग खाने-पहनने में सीमा से अधिक किफायतसारी करके जीवन व्यतीत करते थे; यज्ञनाथ के रहन सहन में भी उसी उच्चादर्श की झलक थी। परन्तु वे सम्पूर्ण सिद्धि प्राप्त न कर सके थे, कुछ आधुनिक समाज के दोष से तथा कुछ शरीर रक्षा सम्बन्धी प्रकृति के अन्याय पूर्ण आवश्यक नियमों के दबाव से।

जब तक लड़का अविवाहित रहा, तब तक तो वह सहन करता रहा, परन्तु, ब्याह हो जाने के पश्चात् ही रहन-सहन के विषय में पिता के उच्च आदर्शों के साथ उसके आदर्श का मेल न बैठा। यह बात दिखाई दी कि लड़के का आदर्श क्रमश: आध्यात्मिक की ओर अधिक बढ़ रहा है। सर्दी-गर्मी एवं भूख-प्यास के सताये हुए

पार्थिव-समाज की देखा देखी उसके कपड़ों का नाप तथा भोजन की तौल दिन पर दिन बढ़ने लगी।

इन बाप बेटों में इस विषय को लेकर अक्सर झगड़ा होने लगा। अन्त में, वैद्यराज ने वृन्दाबन की स्त्री को कठिन बीमारी में एक कीमती औषधि बताई, इसी पर यज्ञनाथ ने उन्हें व्यर्थ बता कर उसी समय लौटा दिया। वृन्दाबन ने पहिले तो बहुत नम्रता से हाथ पैर-जोड़े, फिर क्रोध भी दिखाया परन्तु कोई फल न निकला। पत्नी की मृत्यु के पश्चात् उसने पिता को हत्यारा कहकर संबोधित किया।

पिता ने कहा—"कोई दवा खाकर क्या मरता नहीं? यदि बहुमूल्य दवाइयाँ खाकर ही सब बच जाते, तो फिर राजा बादशाह आदि क्यों मरते? जिस प्रकार तेरी माँ मरी, और तेरी दादी मरी है उसी प्रकार तेरी स्त्री क्या उनसे अधिक धूमधाम के साथ मरती?"

वृन्दाबन यदि वास्तव में शोक में अन्धा होकर स्थिर चित से विचार करता तो इन बातों से उसे कुछ न कुछ सान्त्वना मिलती। इस घर की ऐसी ही सनातन प्रथा है। परन्तु आधुनिक लोग पुराने नियमों से मरना भी पसन्द नहीं करते। यह बात तो उस समय की है, जब अंग्रेजों का यहां आना प्रारम्भ हुआ था। परन्तु उस समय, तबके पुराने जमाने के आदमी तबके नये जमाने के आदमियों का रहन-सहन और ढंग देखकर आश्चर्य चकित रह जाते थे!

कुछ भी हो, बात यह है कि तबके नये जमाने के वृन्दाबन ने तब के पुराने जमाने के यज्ञनाथ से झगड़ा कर डाला और कहा— लो, मैं अभी जा रहा हूँ।

पिता ने उसे उसी समय चले जाने की अनुमति देकर सब के सामने कहा—"मैं अगर वृन्दाबन को एक पाई भी दूँ तो वह गौरक्त गिराने के समान होगा।" वृन्दाबन ने भी सबके सामने कहा—"यदि मैं आपकी एक कौड़ी भी छुऊँ तो मुझे माँ की हत्या का पाप लगे।" इसके पश्चात् पिता-पुत्र में विच्छेद हो गया।

गाँव के लोगों को बहुत दिनों की शान्ति के पश्चात् ऐसी एक छोटी-मोटी क्रान्ति से कुछ थोड़ी सी प्रसन्नता ही हुई। मुख्यतः वृन्दाबन के अपने उत्तराधिकार से वंचित होने के पश्चात् सभी अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार यज्ञनाथ के वर्तमान असहनीय पुत्र-वियोग के दुःख को दूर करने का प्रयत्न करने लगे। सभी कहते-साधारण सी एक बहू के लिये, लड़का बाप के साथ इस तरह लड़कर घर त्याग देगा, यह केवल इसी जमाने में सम्भव है।"

वे एक खास युक्ति के साथ कहने लगे—"एक बहू के जाने पर दूसरी बहू तो मिल सकती है, परन्तु दूसरा बाप सिर फोड़ने पर भी नहीं मिलता।" इसमें कोई सन्देह नहीं, युक्ति बिल्कुल सत्य है, परन्तु हमारा तो ऐसा विश्वास है कि वृन्दाबन जैसा लड़का इस युक्ति को सुनकर सन्ताप न करता, बल्कि कुछ निश्चन्त ही होता।

पिता को वृन्दाबन के जाते समय अति दुःख हुआ हो, सो भी नहीं है। उसके जाने से एक तो खर्च कम हुआ दूसरे एक बहुत बड़ा डर भी समाप्त हो गया। नहीं तो उन्हें हर वक्त हर समय यही चिन्ता बनी रहती थी कि न जाने किस समय वह उन्हें विष देकर मार डालेगा वैसे ही वे बहुत थोड़ा खाते थे, उसके साथ विष की चिन्ता ? बहू की मृत्यु के पश्चात् यह चिन्ता कुछ कम ई थी, लेकिन अब लड़के के चले जाने से तो बिल्कुल ही दूर हो गई।

उनके मन में केवल एक ही व्यथा चुभ रही थी। गोकुलचंद उनका एक चार साल का पोता था। वृन्दावन उसे भी साथ लेता गया था। गोकुल के खाने--पहनने का व्यय औरों की अपेक्षा कुछ कम था। इसीलिये यज्ञनाथ का उस पर स्नेह बहुत कुछ निष्कंटक था। परन्तु जब वृन्दावन उसे भी लेकर चला गया तो उसके वास्तविक शोक में भी यज्ञनाथ के हृदय में क्षण--भर के लिए जमा खर्च का एक हिसाब जाग्रत हो उठा। वह यह हिसाब लगाने लगे कि दोनों के चले जाने से महीने के खर्च में कितनी कमी हुई, उन्हें साल में कितनी बचत हुई, और इस प्रकार वह कितने रुपयों की ब्याज हुई।

परन्तु फिर भी उनके लिये सूने घर में गोकुलचन्द का ऊधम न होने से टिकना कठिन हो गया यज्ञनाथ को आजकल ऐसी मुसीबत का सामना करना पड़ रहा है कि पूजा के समय कोई बाधक नहीं होता, खाते समय कोई छीन कर नहीं खाता तथा हिसाब लिखते समय जो दावात लेकर भाग जाय ऐसा भी कोई नहीं रहा। शान्ति से बिना किसी, उपद्रव के, उनका चित्त खाने--पीने एव सोने-उठने में व्याकुल होने लगा।

उन्हें ऐसा प्रतीत होने लगा, जैसे मृत्यु के पश्चात् ही शायद लोग ऐसी उत्पातहीन शून्यता प्राप्त करते हैं। मुख्यतः बिछौने पर उनके पोते के द्वारा किये गये हुये छेद तथा बैठने की चटाई पर उक्त चित्रकार द्वारा अंकित स्याही के चिह्नों को देखकर उनका हृदय और भी अशान्त हो उठता। उस अमिताचारी बालक ने बाबा के पहनने की धोती दो ही वर्ष की अवस्था में बिल्कुल चीड़फाड़ डालने के कारण, एकदिन बहुत कुछ डाट-फटकार सुनी थी, परन्तु अब उन्होंने एक दिन जब सोते समय अपने कमरे में उस फटे हुये पड़े को देखा तो उनकी आँखें भर आई। उसे उन्होंने

दिये की बत्ती का पलीता बनाने में, या किसी घर गृहस्थी के काम में न लाकर, संभाल कर सन्दूक में रख दिया तथा मन ही मन प्रतीक्षा की यदि गोकुल वापिस आ जाय और वह साल में एक धोती भी फाड़ डाले तो भी अब वे कभी उसे डाटें-डपटेंगे नहीं।

परन्तु गोकुल नहीं लौटा। यज्ञनाथ की अवस्था मानो अब पहिले से भी अधिक शीघ्रता से आगे बढ़ने लगी। उन्हें वह सूना घर दिन प्रति दिन और भी अधिक सूना प्रतीत होने लगा।

यज्ञनाथ से अब उस सूने घर में टिका नहीं जाता। दोपहर को जब भले आदमी खा-पीकर सुख से आराम करते हैं, तब यज्ञनाथ हुक्का हाथ में लिये मौहल्ले-मौहल्ले में घूमा करते हैं। उनके इस शान्त दोपहरी में घूमने के समय, रास्ते में खेलते हुये लड़के अपना खेल छोड़कर एकान्त स्थान में भाग जाते तथा उनकी कंजूसी के संबंध में स्थानीय कवि रचित अनेक छंद व अन्य रचनायें खूब ऊँचे स्वर में गाया करते, ताकि उन्हें सुनलें। लोग इस डर से कि कहीं दिन भर भूखा ही न रहना पड़े, उनका पितृदत्त नाम तक अपने मुँह से न निकालते। लोगों ने अपनी-अपनी इच्छानुसार उनके भिन्न--भिन्न नाम रख लिये। वृद्ध उन्हें यज्ञनाथ कहा करते हैं, परन्तु लड़के क्यों उन्हें चमगादर कहकर पुकारा करते हैं, इसका कोई भी स्पष्ट कारण मालूम नहीं पड़ता।

२

एक दिन दोपहर को इसी प्रकार आम के वृक्ष की छाया के नीचे यज्ञनाथ गाँव के ठंडे रास्ते पर घूम रहे थे। उन्होंने देखा कि अपरचित बालक गाँव के लड़कों का सरदार बनकर उपद्रव का एक बिल्कुल ही नया रास्ता दिखला रहा है। सब लड़के उसके

चरित्र-बल तथा नवीन कल्पना-शक्ति पर मुग्ध होकर तन-मन से उसके वश में हो गये हैं ।

सब लड़के उस बुड्ढे को देखकर जिस प्रकार खेल छोड़कर भाग जाया करते थे, इस लड़के ने वैसा न करके बूढ़े के पास जाकर, उनके ऊपर झट से अपनी चादर झाड़ दी । चादर में से एक छिपकली निकलकर बूढ़े के ऊपर गिरी और पेड़ों की ओर भाग गई । इस यकायक घटना से बूढ़े के रोंगटे खड़े हो गये और लड़कों में एक बहुत खुशी का शोर मच गया । फिर कुछ दूर जाते-जाते यज्ञनाथ के कन्धे पर से अँगोछा ही गायब हो गया और वह उस अपरचित बालक के सिर पर पगड़ी का काम देता हुआ दिखाई देने लगा ।

यज्ञनाथ इस अनजान बालक के द्वारा इस प्रकार का नया शिष्टाचार पाकर बहुत ही प्रसन्न हुए । उन्होंने बहुत दिनों से किसी बच्चे से ऐसा निःसंकोच अपनापन नहीं पाया था । तब बहुत बार लालच देकर, उसे बुला-बुलाकर यज्ञनाथ ने उसे कुछ-कुछ अपने वश में कर लिया और पूछा—"तेरा नाम क्या है ?"

वह बोला—"निताईचन्द्र पाल ।"

"कहाँ रहता है ?"

"मैं नहीं बताऊँगा ।"

"तेरे पिता का नाम क्या है ?"

"यह भी नहीं बताऊँगा ।"

"क्यों नहीं बतायेगा ?"

"मैं घर से भाग कर आया हूँ ।"

"क्यों ?"

"पिताजी मुझे स्कूल में भर्ती कर रहे थे ।"

उसी वक्त यज्ञनाथ ने अनुभव किया कि ऐसे लड़के को पढ़ाना व्यर्थ का खर्च बढ़ाना है तथा बाप की बेवकूफी का ही परिचायक है ।

यज्ञनाथ ने कहा—"हमारे घर चल कर रहेगा !"

लड़के ने कोई भी आपत्ति न की तथा वह निःसंकोच उनके घर चला गया; जैसे वह कोई सड़क के किनारे के वृक्ष की छाया हो । केवल इतना ही नहीं, खाने-पहनने के विषय में भी वह दृढ़ता के साथ मनमाना हुक्म चलाने लगा, जैसे उसने पहिले से ही उसके दाम पूरे चुका रक्खे हों । उसके इस विषय को लेकर कभी-कभी घर के मालिक से झड़प भी हो जाया करती थी । अपने लड़के को हरा देना सरल है, परन्तु उन्हें दूसरे के सामने स्वयं ही पराजित होना पड़ा ।

३

गाँव के लोग यज्ञनाथ के घर निताई का ऐसा कल्पनातीत लाड़-प्यार देखकर आश्चर्य करने लगे । लोग अनुमान लगाने लगे कि बूढ़ा अब अधिक समय तक नहीं जीयेगा और मरते समय इस परदेशी लड़के को अपनी सब धन-दौलत दे जायेगा । इसलिये उस लड़के से सभी ईर्ष्या करने लगे और उसका अनिष्ठ करने के लिये तैयार हो उठे । परन्तु वृद्ध यज्ञनाथ उसे सदैव छाती की पसलियों की तरह छिपाये रहते थे । उसे अपने से कभी अलग होने ही नहीं देते थे । यदि कभी लड़का चले जाने की धमकी दिया करता तो यज्ञनाथ उसे लोभ देते—"बेटा, मैं तुझे अपनी तमाम दौलत दे जाऊँगा ।" लड़के की अवस्था तो थोड़ी ही थी, परन्तु वह इस बात का अर्थ तथा मूल्य पूरी तरह समझ सकता था ।

तब गाँव के लोग उस लड़के के बाप की तलाश करने लगे और कहने लगे—"हाय, इसके माँ-बाप को न जाने कितना कष्ट हो रहा होगा ? लड़का भी तो कम शैतान नहीं। घर जाने का नाम भी नहीं लेता। यह कह कर वे लड़के को अव्यक्त भाषा में गालियाँ देते। उनमें इतनी अधिक चरपराहट होती कि न्यायबुद्धि की अपेक्षा स्वार्थ की जलन ही अधिक पाई जाती।

एक दिन बूढ़े ने एक राहगीर से सुना कि दामोदर नामक एक आदमी अपने खोये हुये लड़के को खोज करता फिरता है, और वह इधर को ही आ रहा है।

इस समाचार के सुनते ही निताई घबरा उठा और अपनी भविष्य में मिलने वाली जायदाद का लोभ छोड़कर भागने को तत्पर हो गया।

यज्ञनाथ उसे बार-बार समझाने लगे—"मैं तुझे ऐसी जगह छिपा दूँगा कि कोई भी न ढूँढ़ सकेगा।" गाँव के लोग भी नहीं। बालक बड़े कौतूहल में पड़ गया और वह बोला—"कहां है वह जगह, दिखा दो न जरा।"

यज्ञनाथ बोले—रात को दिखाऊँगा।"

इसी समय दिखाने से सब भेद प्रगट जो हो जाता।

इस नये रहस्योद्घाटन की आशा से निताई फूला न समाया। उसने मन ही मन निश्चय कर लिया कि बाप जब अपना सा मुँह लिये लौट जायेगा, तब वह लड़कों से होड़ बदकर आँख-मिचौनी खेलेगा। जब उसे कोई भी ढूँढ़ न पायेगा, तब बड़ा मजा आयेगा। पिताजी आकर तमाम गाँवों में उसकी खोज करेंगे, फिर भी वे उसे न पायेंगे। यह भी खूब मजे की बात होगी।

यज्ञनाथ दोपहर को निताई को घर में बन्द करके कहीं बाहर चले गये। घर वापिस आने पर, उसने प्रश्नों द्वारा उनके नाक में दम कर दिया। शाम होते ही वह बोला—'चलो न'

यज्ञनाथ ने कहा—"अभी रात नहीं हुई।"

निताई फिर बोला—"चलो, बाबा रात हो गई।"

"अभी मोहल्ले के लोग जाग रहे हैं।"

थोड़ी देर ठहर कर निताई फिर बोला—"चलो अब सो गये।"

रात बढ़ने लगी। निताई बड़ी मुश्किल से अपनी नींद को रोकने का प्रयत्न करने लगा, परन्तु फिर भी बैठा-बैठा ऊँघने लगा। आधी रात के समय यज्ञनाथ निताई का हाथ पकड़ कर शान्त गाँव के अँधेरे रास्ते से बाहर निकले। रात सुनसान थी। कहीं भी किसी प्रकार का शोर गुल न था, सिर्फ बीच-बीच में कुत्तों का भोंकना सुन पड़ता था। निशाचर पक्षी कभी-कभी पैरों की आहट सुनकर जंगल की ओर उड़ जाते। निताई को भय लगने लगा। उसने यज्ञनाथ का हाथ जोरों से पकड़ लिया। दोनों अन्त में लम्बा रास्ता तय करके एक जंगल में मूर्तिहीन खंडहर मन्दिर में जा पहुँचे। निताई ने कुछ उदास होते हुये पूछा—"यहाँ ?"

उसने जैसा सोचा था, वैसा तो नहीं हुआ। इसमें तो कोई खास रहस्य दिखाई नहीं देता। उसे ऐसे पुराने खण्डहर मन्दिरों में घर छोड़ने के पश्चात् कई रातें व्यतीत करनी पड़ी हैं। यह स्थान आँख-मिचौनी खेलने के लिये बुरा नहीं है। परन्तु यहाँ से किसी को ढूँढ़ निकालना कोई बड़ी बात नहीं है।

यज्ञनाथ ने मन्दिर के फर्श के बीच का एक पत्थर उठाया। निताई ने देखा कि नीचे एक कोठा सा है और वहां एक दीपक जल रहा है। उसे यह देखकर बहुत ही आश्चर्य एवं कौतूहल हुआ। साथ ही भय भी लगने लगा। यज्ञनाथ एक बाँस की नसैनी के सहारे नीचे उतर गये। निताई भी डरते-डरते उनके पीछे-पीछे उतरा।

उसने नीचे आकर देखा कि चारों ओर पीतल के कलसे रक्खे हैं उनके बीच में एक आसन है तथा उसके सामने सिन्दूर, चन्दन, फूलों की माला आदि पूजा की वस्तुऐं रक्खी हैं। निताई ने आगे बढ़कर कौतूहल दूर करने के लिये देखा कि कलसों में सिर्फ रुपये और मुहरें भरी हुई हैं।

यज्ञनाथ बोले—"निताई! मैंने तुमसे कहा था न, मैं अपना समस्त धन तुम्हीं को दे जाऊँगा? मेरे पास अधिक कुछ नहीं है। सिर्फ यही थोड़े से घड़े मेरी समस्त पूँजी है। मैं आज यह सब तुम्हें सौंप दूँगा।" निताई खुशी के मारे उछल पड़ा बोला—"यह सब के सब? तुम इसमें से एक भी न लोगे?"

"अगर लूँ तो मेरे हाथों में कोढ़ हो जाय। पर एक बात है, यदि मेरा पोता गोकुल या उसका लड़का या पोता या हमारे खानदान का कोई भी आ जाय तो तुम्हें ये सब रुपये उसे लौटा देने पड़ेंगे।"

निताई ने सोचा—"बूढ़ा पागल हो गया है।" अस्तु, उसी समय शर्त मंजूर करते हुए कहा—"अच्छा।"

यज्ञनाथ बोले—"तो इस आसन पर बैठ जाओ।"

"क्यों?"

"तुम्हारी पूजा होगी।"

"क्यों?"

"ऐसा नियम है।"

निताई आसन पर बैठ गया। यज्ञनाथ ने उसके माथे पर चन्दन लगाया सिन्दूर का टीका किया, गले में माला पहनाई तथा बैठकर बड़बड़ाते हुये मंत्रोच्चारण करने लगे।

निताई को देवता बनकर, आसन पर बैठकर मन्त्र सुनने में भय लगने लगा। वह चिल्ला उठा—"बाबा।"

यज्ञनाथ कोई उत्तर न देकर मन्त्र पढ़ते ही गये ।

अन्त में बड़ी कठिनाई से एक-एक कलसे को घसीट-घसीट कर बालक के सामने रखते और उसे समर्पण करते गये । प्रत्येक बार कहलाते गये—"मैं निताईपाल युधिष्ठिर कुण्ड के पुत्र गदाधर कुण्डू तस्य पुत्र प्राण कृष्णा कुण्डू तस्य पुत्र मरमानन्द कुण्डू तस्य पुत्र यज्ञनाथ कुण्डू, तस्य पुत्र वृन्दावन कुण्डू तस्य गोकुलचन्द कुण्डू अथवा उसके पुत्र–पौत्र व प्रपोत्र को या न्यात्रतः उत्तराधिकारी को यह सारा धन सौंप दूँगा । लड़का इस प्रकार बार-बार एक ही बात दुहराते-दुहराते हतबुद्धि सा हो गया उसकी जीभ लड़खड़ाने लगी । जब तक यह अनुष्ठान समाप्त हुआ, तब तक दीपक के धुऐं तथा दोनों की श्वासों की दूषित वायु से वह छोटी सी गुफा भाप से भर गई । लड़के का तालू सूख गया, हाथ-पांव जलने लगे तथा दम घुटने की नौबत आ गई ।

दिये की लौ धीमी पड़ गई । उसने समझा—यह दिया भी बुझ गया । बच्चे ने अँधेरे में अनुभव किया कि यज्ञनाथ नसैनी के सहारे ऊपर बढ़ रहे हैं । तब वह व्याकुल होकर पूछ बैठा–'बाबा ! कहां जाते हो ?"

यज्ञनाथ बोले—"मैं जा रहा हूँ । तू यहीं रह । अब तुझे कोई भी न ढूँढ़ सकेगा । परन्तु ध्यान रखना यज्ञनाथ का पौत्र वृन्दाबन का पुत्र गोकुलचन्द ।" बूढ़ा इतना कह कर ऊपर चढ़ गया तथा उसने झट से नसैनी खींच ली ।

निताई का दम घुटने लगा उसने बड़ी मुश्किल से इतना कहा-"बाबा; मैं बापू के पास जाऊँगा ।"

ऊपर पहुँच कर यज्ञनाथ ने उस छेद को पत्थर से ढँक दिया तथा [illegible] पर कान लगाकर सुना । निताई घुटते हुए कंठ से अंतिम पुकार कर रहा है-"बापू, बापू, ओ बापूजी !"

उसके पश्चात् किसी चीज के गिरने का धमाका हुआ। फिर कोई आवाज सुनाई नहीं दी। इस प्रकार यज्ञनाथ यज्ञ के हाथ धन सौंप कर उस पत्थर के टुकड़े को मिट्टी से ढकने लगे। उसके ऊपर खण्डहर की ईंटों का ढेर लगा दिया। फिर उस पर घास जमाई तथा छोटे-छोटे जंगली पौधे लगा दिये। रात करीब-करीब समाप्त हो चुकी थी। परन्तु वे उस स्थान को न छोड़ सके। रह-रह कर बार-बार जमीन से कान लगा कर सुनने लगे। मालूम होने लगा—मानो बहुत दूर से, पृथ्वी के अतल स्पर्श से, रोने-बिलखने की आवाज उठ रही है। मालूम हुआ मानो रात का आकाश केवल उसी एक ही आवाज की ध्वनि से भरा जा रहा है। पृथ्वी के समस्त सोये हुये प्राणी उस आवाज से अपने-अपने बिस्तर पर जाग कर बैठ गये हैं तथा कान लगा कर सुन रहे हैं।

बूढ़ा घबरा-घबरा कर मिट्टी पर मिट्टी डाल रहा था, मानो इसी प्रकार वह पृथ्वी का मुँह बन्द कर देगा।

'बाबूजी' अब यह कौन बुला रहा है।

बूढ़े ने मिट्टी पर लात मारते हुए कहा—'सब सुन लेंगे, चुप रह।'

किसी ने फिर पुकारा—'बापू जी।'

देखा दिन निकल आया है। वह डरता हुआ मन्दिर से निकल कर खेतों में पहुँचा—'बापू जी!' वहाँ भी किसी ने पुकारा। यज्ञनाथ ने चौंक कर पीछे की ओर देखा तो वृन्दाबन।

वृन्दाबन ने कहा—'बापूजी, मैंने सुना है, मेरा लड़का तुम्हारे यहाँ आ गया है' उसे मुझे दे दो।'

बूढ़े ने वृन्दाबन के ऊपर आंखें उठाईं फिर-मुँह विकृत करके कहा—'तेरा लड़का?'

वृन्दाबन ने कहा—'गोकुल, अब उसका नाम निताई चन्द्रपाल है। मेरा नाम दामोदर है। तुम्हारी आस-पास सब जगह बहुत नामबरी है ना हम लोगों ने इसीलिये शर्म के मारे अपना नाम बदल दिया है। नहीं तो हम लोगों का कोई भी नाम नहीं लेता।

बूढ़ा मानों दसों उँगलियों से आकास टटोलता हुआ हवा को जोरों से पकड़ने का प्रयत्न करने लगा। परन्तु कुछ हाथ न लगा। वह धड़ाम से पृथ्वी पर पछाड़ खाकर गिर पड़ा।

यज्ञनाथ होस आने पर वृन्दाबन को मन्दिर की तरफ घसीट कर ले गये बोले–'रोना सुनाई पड़ता है।'

वृन्दाबन बोला—'नहीं तो।'

बूढ़ा अब मानो बिलकुल निश्चिन्त हो गया।

उसके पश्चात्, अब वह सभी से पूछता फिरता है— रोना सुनाई देता है!'

सब लोग उसकी पागलों जैसी बात सुनकर हँस देते।

चार वर्ष के पश्चात् बूढ़े की मृत्यु का समय निकट आया। जब आँखों के सामने से दुनियां का दीपक बुझने को हुआ तथा साँस रुकने लगी। तब विकार के वेग में सहसा उठकर वह बैठ गया। एक बार उसने दोनों हाथों से टटोलते हुए कहा—'निताई मेरी नसैनी किसने उठा ली?'

जब यज्ञनाथ को उस बिना आयु के अन्धकारमय महा गह्वर से निकलने की नसैनी न मिली तो वह धम से बिछौने पर गिर पड़ा तथा इस संसार के रात–दिन के आंख–मिचौनी के खेल में, जहाँ कोई किसी को ढूँढ़ नहीं सकता, वहीं को चल दिया।

रामकन्हाई की मूर्खता

जो यह कहते हैं कि गुरुचरण की मृत्यु के समय उनकी दूसरी पत्नी घर में बैठी ताश खेल रही थी, वे लोग विश्वनिन्दक हैं, राई का पहाड़ बना देना ही उनका कार्य है। वास्तव में बहू जी उस समय एक पांव की पालती पर बैठ कर, दूसरे पैर का घुटना ठोड़ी से मिलाकर, कच्ची इमली, हरी मिर्च तथा मछली से भात खा रही थीं। जब बाहर से पुकार उठी तो वे अन्न के बर्तन को छोड़कर गम्भीर भाव से बोलीं—"मुझे यहे भी फुरसत नहीं कि थोड़ा भोजन भी कर सकूँ।"

इधर जब डाक्टर ने जवाब दे दिया, तब गुरुचरण के भाई रामकन्हाई रोगी के पास बैठ कर धीमे से बोले—"दादा यदि तुम्हारी वसीयतनामा लिखाने की तबीयत हो तो बताओ।" गुरुचरण क्षीण-स्वर से बोले मैं कहता हूँ, तुम लिख लो।"

गुरुचरण ने कहा—"मैं अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति अपनी पत्नी वरदासुन्दरी को दे जाता हूँ।" राम कन्हाई ने लिखा अवश्य, परन्तु यह शब्द लिखने के लिये उनकी कलम नहीं चल रही थी। इनको बड़ी आशा थी कि उनका एक मात्र पुत्र नवदीप अपने ताऊ की सम्पूर्ण सम्पत्ति का अधिकारी होगा। हालांकि दोनों भाई अलग-अलग रहते थे, फिर भी नवदीप की मां ने इसी आशा से उसे नौकरी

नहीं करने दी थी। तथा शीघ्र ही उसका विवाह भी कर दिया था। परन्तु फिर भी रामकन्हाई ने लिखा, साथ ही दस्तखत करने के लिये कलम दादा के हाथ में पकड़ा दी। गुरुचरण के निर्जीव हाथों ने जो दस्तखत किये, वह काँपती हुई टेढ़ी-मेढ़ी रेखा थी या दस्तखत-यह समझना कठिन था।

वरदासुन्दरी भोजन करके जब उस कमरे में आईं तब तक गुरुचरण की आवाज बन्द हो चुकी थी। यह देखकर वे रोने लगीं। जो लोग उस सम्पत्ति से वँचित हो गये थे, वे इस रुदन को ढोंग कहने लगे, परन्तु यह बात विश्वास योग्य नहीं है।

नवदीप की माँ वसीयतनामे का हाल सुनते ही दौड़ी आई और शोर मचाते हुये बोली—"मृत्यु के समय इस प्रकार बुद्धि नष्ट हो जाती है। एक अच्छे भतीजे के रहते······"

रामकन्हाई यद्यपि स्त्री पर बहुत श्रद्धा करते थे, दूसरे शब्दों में उसे भय भी कहा जा सकता है, परन्तु वे इस तर्क को सहन न कर सके। दौड़कर आगे बोले—"बहू तेरी बुद्धि नष्ट तो नहीं हो गई, फिर तू ऐसा क्यों करती है? दादा चले गये, लेकिन मैं तो हूँ। तुम्हें जो कुछ भी कहना हो, पीछे मुझ से कह देना। यह उचित समय नहीं है।"

जब नवदीप को इसका पता चला, तो वह भी आ पहुंचा। परन्तु ताऊजी तब तक स्वर्ग सिधार चुके थे। नवदीप मृत-व्यक्ति को धमकी देते हुये बोला—"देख लूँगा, मुँह में अग्नि कौन देता है और तुम्हारा श्राद्ध करूँ तो मेरा नाम नवदीप ही नहीं।" गुरुचरण श्राद्ध आदि को कुछ नहीं मानते थे। वे डफ साहब के छात्र रह चुके थे। शास्त्रानुसार जो चीज सब से अधिक अभक्ष्य होती है, उसी के खाने से उन्हें विशेष तृप्ति होती थी। यदि लोग उन्हें ईसाई कहते तो वे दाँतों तले जीभ दबाते और कहते—'यदि मैं

ईसाई होऊँ तो गऊ का मास खाऊँ । जीवित अवस्था में जिसका यह हाल था, मरने के पश्चात वह पिण्ड नाश के डर से जरा भी विचलित होगा, यह सम्भव नहीं था । पर वर्तमान दशा में प्रति-शोध लेने का इससे अच्छा और कोई अवसर न था । रामकन्हाई वरदासुन्दरी के पास जाकर बोले—"भाभी ! भैया तुम्हें ही सारी सम्पत्ति दे गये हैं । यह लो वसीयत । इसे लोहे के बक्स में सम्हाल कर रख दो ।"

विधवा उस समय उच्च-स्वर में विलाप कर रही थी । दो-चार दासियाँ भी उसके स्वर में स्वर मिलाकर अपने शोक-संगीत से सारे गाँव की निद्रा दूर कर रही थीं । उसके बीच में इस कागज के टुकड़े में आकर कम से कम तान तो तोड़ ही दी । विधवा का विलाप अब उनकी वाणी में फूट पड़ा ।

"अरे मेरा यह सर्वनाश कैसे हो गया ? अच्छा देवर जी ! यह वसीयत किसने लिखी है ? आपने ? और अब ये आपके सिवाय मेरा और है भी कौन ?"

"अरे तुम लोग जरा ठहर जाओ, इतना क्यों चीख रही हो ? मुझे देवरजी की बात सुनने दो । हाय मैं पहिले ही क्यों नहीं मर गई ?" रामकन्हाई मन ही मन बोले—"यह हमारे भाग्य का दोष है ।"

घर लौट कर नवदीप की मां रामकन्हाई को भला बुरा कहने लगीं । रामकन्हाई भी उसी भाँति चुपचाप स्त्री की बात सुनते रहे जिस प्रकार लदी हुई गाड़ी लेकर बैल गड्ढे में गिरकर, गाड़ीवान के हाथ से मार खाकर भी चुपचाप खड़े रहते हैं । अन्त में जब वे यह सहन न कर सके, तब धीमे स्वर में बोले–"मेरा क्या कसूर है ? मैं तो दादा नहीं हूं ?"

नवदीप की मां फुसकार कर बोली—"नहीं जी तुम बड़े भले आदमी हो। तुम कुछ भी नहीं जानते। दादा ने कहा—लिखो भाई वैसे ही लिखते गये। तुम सब एकसे हो। मुझे मालूम है कि तुम सब समय आने पर ऐसी ही बुद्धिमानी करोगे। मेरे मरते ही किसी दूसरी डाइन को घर में ले आओगे। नन्हे से नवदीप को गहरे पानी में बहा आओगे। पर इसके लिये बेफिक्र रहो, मैं जल्दी नहीं मरने की।

गृहिणी इस प्रकार रामकन्हाई के भावी अत्याचार की कल्पना करके उत्तरोत्तर अधिक उत्तेजित होने लगी। रामकन्हाई यह निश्चित रूप से जानते थे कि इस काल्पनिक आशंका को दूर करने के लिये यदि उन्होंने कुछ भी कहा तो उसका परिणाम उलटा होगा। वे इस भय से अपराधी की भांति चुप नीचा मुँह किए खड़े रहे मानो उनसे यह भूल हो गई है, मानो वे नन्हे से नवदीप को कुछ न देकर मर गये हैं। अब इस अपराध को स्वीकार किये बिना कोई रास्ता भी तो नहीं है।

नवदीप इस बीच में अपने बुद्धिमान मित्रों से परामर्श करके घर आया और माँ से बोला—"माँ कोई चिन्ता की बात नहीं है। यह सम्पत्ति मुझे ही मिलेगी। बाबूजी को कुछ दिन के लिये यहाँ से कहीं दूर भेजना होगा। उनके यहाँ रहने पर सब काम चौपट हो जायगा।" नवदीप की माँ को उसके पिता की बुद्धि पर जरा भी श्रद्धा नहीं थी। इसलिये पुत्र की बात उन्हें युक्ति संगत मालूम पड़ी। तब उनकी ताड़ना से यह निर्बोध, अनावश्यक तथा अकर्मण्य पिता किसी प्रकार कुछ दिन के लिये काशी चला गया।

वरदासुन्दरी तथा नवदीपचन्द कुछ दिनों के पश्चात् एक दूसरे के प्रति जाली वसीयतनामा बनाने का मुकद्दमा दायर करके अदालत में पहुँचे। नवदीप ने अपने नाम की जो वसीयत दिखलाई, उसमें

गुरुचरण के हस्ताक्षर स्पष्ट जान पड़ते थे। उसके एक-दो गवाह भी मिल गये। वरदासुन्दरी के पक्ष में नवदीप के पिता ही एक मात्र साक्षी थे। उनके मामा का एक भाई था, जो उन्हीं के घर में रहता था। वह बोला—'तुम बिलकुल चिन्ता मत करो, मैं स्वयं गवाही दूंगा तथा अन्य गवाही भी तलाश कर लाऊँगा।

जब मामला पूरी तरह से पेचीदा हो चुका, तब नवदीप की माँ ने नवदीप के बाप को काशी से बुला लिया।

इसी बीच रामकन्हाई को डाक से अचानक एक गवाही का सम्मन मिला। वह विस्मित होकर इस सम्मन का अर्थ सोचने लगे। सहसा नवदीप की माँ आकर रोने लगी—'चुड़ैल ने मेरे लाल को सम्पत्ति से ही वंचित नहीं किया, बल्कि अब उसे जेल भिजवाने का प्रबन्ध भी कर रही है।'

अन्त में, जब रामकन्हाई सारा मामला समझ गये तो दंग रह गये। वे झुँझलाकर जोर से बोल उठे—'अरे तुम लोगों ने यह क्या सत्यानास कर डाला?' इस समय गृहिणी ने भी अपना स्वरूप प्रगट कर दिया। बोली—'क्यों इसमें नवदीप का क्या दोष है? यह अपने ताऊ की जायदाद न ले?'

हतबुद्धि रामकन्हाई ने जब यह देखा कि उसकी स्त्री-पुत्र दोनों ही मिल कर कभी तर्जन-गर्जन तथा कभी अश्रु-वर्षण कर रहे हैं तब वे तकदीर ठोक कर बैठ गये। अन्न-जल सब छोड़ दिया।

इसी प्रकार दो दिन चुपचाप बिना कुछ खाये-पीये ही व्यतीत हो गये। मुकद्दमे का दिन आया। इस बीच में नवदीप ने वरदासुन्दरी के ममेरे भाई को डरा-धमकाकर ऐसा वश में कर लिया कि उसने नवदीप के पक्ष में ही गवाही दी। जब जयश्री वरदासुन्दरी को त्याग कर दूसरी ओर जाने की तैयारी कर रही थी, तब रामकन्हाई गवाही देने के लिये खड़े हुए।

दो दिन बिना कुछ खाने-पीने से वृद्ध रामकन्हाई की बड़ी बुरी दशा थी। वे गवाही के कटघरे में खड़े हो गये। चतुर बैरिस्टर ने बड़ी सावधानी से नाना प्रकार के प्रश्न किये। तब रामकन्हाई ने जज की ओर देखते हुए हाथ जोड़कर कहा—'हुजूर मैं वृद्ध हूँ, बहुत कमजोर हूँ, मुझमें अधिक बोलने की दम नहीं है। मुझे जो कुछ कहना है, संक्षेप में कहता हूँ। मेरे भाईसाहब गुरुचरण चक्रवर्ती मृत्यु के समय अपनी सारी सम्पत्ति अपनी पत्नी श्रीमती वरदासुन्दरी को वसीयत करके दे गये थे। वह वसीयतनामा मेरे अपने हाथ से लिखा था। दादा ने अपने हाथ से उस पर दस्तखत किये थे। मेरे पुत्र नवदीप ने जो वसीयतनामा दिखाया है, वह झूँठा है।' इतना कह कर रामकन्हाई मूर्छित होकर गिर पड़े।

चतुर बैरिस्टर ने अपने पास बैठे हुये एटरनी से कहा—'देखा बूढ़े को जिरह में ऐसा कसकर फांसा कि वह सब कुछ कबूल कर गया। ममेरा भाई दीदी के पास दौड़ा आया। बोला—'बूढ़े ने तो सब चौपट कर दिया था, मेरी गवाही से ही मुकद्दमा सम्हल गया।'

दीदी बोली—'मैं तो उसे भला आदमी समझती थी। आदमी को पहिचानना कठिन है।' जेल गये हुये नवदीप के बुद्धिमान मित्रों ने विचार कर निश्चय किया कि बूढ़े ने अवश्य ही डर कर ऐसी गवाही दे डाली है। गवाही देते समय वह अपनी बुद्धि को ठीक न रख सका।

रामकन्हाई घर लौटकर कठिन ज्वर से पीड़ित हो गये तथा दो-चार दिन के बाद पुत्र का नाम लेते-लेते बेचारे विध्वंसकालीन नवदीप के अनावश्यक बाप इस संसार से सदा के लिये विदा हो गये।

घरवालों में से किसी-किसी ने कहा—'अच्छा होता कि वह कुछ दिन पहिले ही चला जाता।' जिस-जिस ने यह बात कही थी मैं उनका नाम नहीं लेना चाहता हूँ।

———

निराशा

दार्जिलिंग पहुँचकर मैंने देखा कि दशों दिशायें मेघ मंडल से आच्छन्न हैं। घर से बाहर जाने की इच्छा नहीं होती थी तथा घर के भीतर रहना भी स्वीकार नहीं था।

होटल में प्रातःकाल का भोजन समाप्त करने के पश्चात् भारी बूट तथा बरसाती पहन कर मैं घूमने के लिये निकल पड़ा। जन-शून्य कलकत्ता रोड पर अकेले घूमते समय मन में यह विचार उठ रहे थे कि इस अवलम्बहीन मेघराज्य में रहने की अपेक्षा यदि शब्द-स्पर्श रूपी परम विचित्रा धरती माता की गोद में पुनः पहुँचा जा सके तो कितना अच्छा हो ?

तभी कुछ दूरी पर किसी नारी—कंठ से निकली हुई रोदन की करुण-ध्वनि सुनाई दी। विविध रोग जम्पन्न इस विचित्र संसार में कहीं भी रोदन की ध्वनि होना तनिक भी आश्चर्यजनक नहीं है। यदि कोई और समय होता तो जिधर से वह ध्वनि आ रही थी, उस ओर मैं आँख उठाकर भी नहीं देखता। परन्तु इस निरसीम मेघ राज्य में वह करुण-रोदन श्रमपूर्ण सुषुप्त संसार के एक मात्र रोदन की भांति मेरे कर्णकुहरों में प्रवेश कर, मुझे उपेक्षित करने लगा।

उस रोदन की ध्वनि को लक्ष्य करते हुए जब मैं आगे बढ़ा तो एक स्थान हर यह देखा कि मार्ग के किनारे शिला खंड पर

बैठी हुई गेरुआ-वस्त्र धारिणी एक नारी कोमल-स्वर में क्रन्दन कर रही है ।

मन ने सोचा—'यह भी खूब रहा कभी किसी सन्यासिनी को पर्वत शिखर पर बैठकर रोती हुई देखूंगा । ऐसी सम्भावना तो स्वप्न में भी नहीं थी ।'

उस नारी की क्या जाति हो सकती है, यह मैं बिलकुल नहीं समझ सका । तो भी उससे हिन्दी में पूछा—'तुम कौन हो और क्या चाहती हो ?'

उसने कोई भी उत्तर नहीं दिया । परन्तु अपने सजल दीप्त नेत्रों को उठा कर, वह मेरी ओर एक बार देख कर चुप हो गई ।

मैंने उससे फिर कहा—'तुम मुझ से डरो नहीं, मैं भद्र पुरुष हूँ ।'

यह सुनकर उसने हँसते हुए हिन्दुस्तानी भाषा में कहा—'अब तो बहुत दिन हुए डर और भय का रोग मुझसे दूर हो गया । शर्म और लज्जा मुझे स्पर्श नहीं करती । बाबूजी ! एक समय मैं जहां रहती थी, वहाँ मेरा सगा भाई भी बिना आज्ञा प्राप्त किये नहीं पहुँच पाता था, परन्तु आज मैं संसार में किसी से भी पर्दा नहीं करती ।'

उसकी बातें सुनकर मुझे मन ही मन कुछ क्रोध आया । मैं विचारने लगा—'मेरी चाल-ढाल तथा पहनावा बिलकुल साहबों जैसा है, फिर इसने मुझे बाबूजी क्यों कहा ?' एक बार विचार किया कि मैं यों ही अपने उपन्यास को समाप्त करके सिगरेट का धुआँ उड़ाता हुआ आगे बढ़ जाऊँ, परन्तु उस रमणी के प्रति हृदय में अत्यन्त कौतूहल जाग्रत हो चुका था । अन्त में उस कौतूहल ने ही मन पर विजय प्राप्त की । मैंने क्षण भर मौन रह कर फिर कुछ

उच्च स्वर में कहा—'मैं तुम्हारी सहायता करने योग्य नहीं, तुम्हारी कोई प्रार्थना हो तो बताओ ।'

उसने इन शब्दों को सुन कर मेरे मुँह की ओर स्थिर तथा अपलक दृष्टि से देखा । फिर बोली—'मैं वृन्दावन की नवाब गुलाम कादिर खाँ की पुत्री हूँ ।'

वृन्दावन किस देश में हैं, गुलाम कादिर खाँ कौनसा नबाब है और उसकी पुत्री सन्यासिनी का वेश धारण किये किस दुख के कारण दार्जिलिंग के कलकत्ता रोड पर बैठ कर रो सकती है इन सब बातों के सम्बन्ध में, मैं कुछ भी नहीं जानता और न इन पर विश्वास ही करता हूँ, फिर भी मैंने निश्चय किया कि रसभंग नहीं होने दूँगा । क्योंकि कहानी अपने आप बहुत जम रही थी ।

उसी समय मैं कुछ गंभीर होकर सलाम करता हुआ उससे बोल उठा—'बेगम साहिबा ! मुझे क्षमा कीजियेगा । मैं आप को पहिचान नहीं पाया था ।'

इसे न पहिचानने के अनेक कारण थे । उनमें सबसे पहला और युक्तियुक्त कारण यह था कि आज से पूर्व मैंने उसे कभी भी नहीं देखा था । दूसरे इस समय जैसा कुहरा छाया हुआ था, उसमें अपने हाथ-पैरों को भी पहिचानना कठिन था । फिर बेगम साहिबा की कौन कहे ?

बेगम साहिबा ने भी मेरे अपराध को क्षमा कर दिया । तदुपरान्त कुछ सन्तुष्ट होकर उन्होंने अपना दाहिना हाथ उठाया और उसके इशारे से एक स्वतन्त्र शिला खंड को दिखाते हुए बोली—'यहाँ बैठ जाइये ।'

मैंने देखा उस रमणी में आज्ञा प्रदान करने की अपूर्व क्षमता है । वृन्दावन के नबाब गुलाम कादिर खाँ की शहजादी नूरुन्निसा अथवा नूरमुल्क ने मुझे दार्जिलिंग में, कलकत्ता रोड के किनारे अपने

सामने वाले शिलाखण्ड पर बैठने की आज्ञा दी है। इस होनहार घटना को मैंने बरसाती पहन कर होटल से बाहर निकलते समय स्वप्न में भी नहीं सोचा था।

हिमालय पर्वत के वक्षस्थल में स्थिति शिलाखण्ड पर एकान्त में बैठे हुए दो पथिक स्त्री-पुरुष की रहस्यमय कहानी एक समय काव्य-कथा की भाँति प्रतीत होती है। दूर से जाने वाली निर्झर-प्रताप की ध्वनि सुनकर पाठक के हृदय में कहाकवि कालीदास द्वारा रचित मेघदूत अथवा कुमारसम्भव का विचित्र संगीत जाग उठता है। तो भी यह मानना पड़ेगा कि बूट तथा बरसाती पहने कलकत्ता रोड के किनारे एक दरिद्र हिन्दुस्तानी रमणी के साथ एकान्त में बैठकर, अपने सम्पूर्ण आत्म गौरव को अक्षुण्य भाव से अनुभव करने वाले लोग संसार में विरले ही हैं। उस दिन घना कोहरा पड़ने के कारण दसों दिशायें वाष्प से आवृत्ति थीं। अस्तु, लज्जा करने योग्य कुछ भी नहीं दिखाई दे रहा था। उस अनन्त मेघराज्य में वृन्दाबन के नबाब ग़ुलाम कादिर खाँ की पुत्री तथा एक नवविकसित बंगाली साहब—मैं—यह दोनों दो अलग शिलाखण्डों पर प्रलय में डूबे हुये संपूर्ण संसार में, बचे हुए दो जीवित प्राणी के समान बैठे हुए थे। इस विषम सम्मेलन का परम परिहास केवल हमारे अदृष्टि को ही दिखाई दे रहा था।, किसी अन्य को दृष्टिगोचर नहीं होता था।

क्षण भर रुककर मैंने पूछा—'बेगम साहिबा! आपका यह हाल किसने किया?'

वृन्दाबन की शहजादी ने यह सुनकर अपने मस्तक पर आघात पहुँचाते हुये उत्तर दिया—"ऐसा कौन किया करता है, इसे मैं क्या जानू? इतने बड़े हिमालय पर्वत को सामान्य वाष्प मेघों द्वारा अपने अन्तराल में किसने छुपा रक्खा है? उसे कौन जानता है?'

उसका उत्तर सुनकर मैंने किसी भी प्रकार का दार्शनिक तर्क न उठाते हुए उसके कथन को चुपचाप स्वीकार कर लिया।

तभी शहजादी ने कहा—'मेरे जीवन की आश्चर्यजनक कहानी आज ही समाप्त हुई है। यदि आप कहें तो मैं उसे सुनाऊँ?

मैंने आग्रह पूर्वक कहा—'अवश्य, अवश्य, इसमें पूछने की क्या आवश्यकता है? यदि आप कृपा पूर्वक अपनी कहानी सुनायेंगी तो मैं अपने को धन्य समझूँगा।'

शहजादी बोली—'मेरे पिता का वंश दिल्ली के सम्राट का वंशज था। उसी वंश-मर्यादा की रक्षा में तत्पर रहने के कारण मेरे लिये उपयुक्त कोई वर नहीं मिल सका था। तभी लखनऊ के नवाब के साथ मेरी सगाई की बातचीत चली। इसी समय दाँत से कारतूस काटने वाले मामले को लेकर विद्रोही सिपाहियों ने सरकार के साथ लड़ाई छेड़ दी। हमारा किला यमुना तट पर स्थित था। हमारी सेना का सेनापति था—एक हिन्दू! उसका नाम था—केशरलाल।

नारी ने केशरलाल का नाम लेते समय मानो अपने कंठ का सम्पूर्ण संगीत उड़ेल कर रख दिया। मैं भी कुछ हिलडुल कर पुनः दत्तचित्त हो, उसकी कहानी सुनने लगा।

वह कहती जा रही थी—'केशरलाल निष्ठावान हिन्दू थे। मैं प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर अपने अन्तःपुर के वाताय. से यह देखती कि केशरलाल यमुना के जल में खड़े होकर नवोदित सूर्य को उद्देश्य करके जलाञ्जलि प्रदान करते थे। तदुउपरान्त वे गीले वस्त्रों को पहने ही भौहावराग को गुनगुनाते हुए अपने घर को लौट आते।

मैं यद्यपि मुसलमान-कन्या थी, परन्तु मैंने कभी भी अपने धर्म की व्याख्या नहीं सुनी थी। अपने धर्म की उपासना पद्धति का भी मुझे ज्ञान नहीं था। उन दिनों विलास तथा सुरा के स्वेच्छाचार

के कारण हमारे घर के राजपुरुषों में धर्म का बन्धन शिथिल हो गया था। अस्तु अन्तःपुर के प्रमोद भवन में भी धर्म में सजीवता विद्यमान न थी।

सम्भवतः विधाता ने मुझमें स्वाभाविक धर्म-पिपासा भर दी थी इसका कोई गूढ़ कारण था या नहीं—यह मैं नहीं जान सकी, परन्तु प्रशान्त प्रभावपूर्ण नवीनमुदित अरुण लोक में तरंगहीन यमुना नदी के निर्जन श्वेत सोपान-तटपर केशरलाल की पूजा-अर्चना को होते देखा मेरा सदय अन्तःकरण एक अव्यक्त प्रकार के माधुर्यपूर्ण भक्तिभाव से ओतप्रोत हो जाता था।

शुद्धाचार से युक्त ब्राह्मण केशरलाल का गौर वर्ण, युवा शरीर, धूम्रहीन ज्योति शिखा की भांति तेजस्वी प्रतीत होता था। उस ब्राह्मण का पुण्य महात्मा मुझ मुसलमान पुत्री के मूढ़ हृदय को अपूर्व श्रद्धा के साथ विनम्र बना दिया करता था।

मेरी एक बाँदी हिंदू थी। वह प्रतिदिन केशरलाल के चरण स्पर्श कर प्रणाम करती और उनकी पद,धूलि को अपने मस्तक पर रखती थी। उसे ऐसा करते देखकर मेरे मन में आनन्द भी होता और उस बाँदी के प्रति ईर्ष्या भी जाग्रत होती थी। मैं उसे कभी कभी आर्थिक सहायता करके पूछती—'क्या तुम केशरलाल को निमन्त्रित नहीं करोगी?' तो उसका उत्तर मिलता—'केशरलाल ब्राह्मण अनन्य हैं, परन्तु वे किसी का अन्न अथवा दान ग्रहण नहीं करते हैं।'

इस प्रकार प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में केशरलाल के प्रति किसी भी प्रकार अपनी भक्ति प्रगट न कर सकने के कारण मेरा हृदय क्षुब्ध और तृषातुर हो जाता था।

मेरे वंश में किसी पूर्व पुरुष ने किसी ब्राह्मण-कन्या के साथ बलपूर्वक अपना विवाह किया था। अस्तु, मैं अन्तःपुर में बैठकर

उसी पुण्य-रक्त का अंश अपनी शिराओं में अनुभव किया करती तथा उसी रक्त-सूत्र के द्वारा केशरलाल के साथ ऐक्य सम्बन्ध स्थापित करने की कल्पना करके कुछ तृप्ति प्राप्त किया करती थी।

इसी समय कम्पनी के सिपाहियों ने विद्रोह छेड़ दिया। हमारे छोटे से किले में भी उस विद्रोह की तरंगें जागृत हो उठीं।

उस समय केशरलाल ने मेरे पिता से कहा—'जब मैं गोमांस भक्षी अंग्रेजों को अपने देश से बाहर निकाल कर ही दम लूंगा।'

मेरे पिता गुलाम कादिर खाँ एक सावधान व्यक्ति थे। उन्होंने केशरलाल की बात सुनकर उत्तर दिया—'अंग्रेज लोग असाध्य को भी सिद्ध कर सकते हैं। हिन्दुस्तान के लोग उनसे लड़कर विजय नहीं पा सकते। मैं अनिश्चित सुख की प्रत्याशा में अपना छोटा सा किला नहीं खोना चाहता। अस्तु, मेरे सैनिक अंग्रेजों के साथ युद्ध नहीं करेंगे।'

जिस समय हिन्दुस्तान के सम्पूर्ण हिन्दू-मुसलमानों का रक्त उत्तेजित हो रहा था, उस समय अपने पिता को बनिये जैसी सावधानी बरतते देखकर मेरे हृदय में उनके प्रति घृणा उत्पन्न हो गई। मेरी बेगम मातायें भी चंचल हो उठी थीं।

इसी समय अपने साथ सशस्त्र सेना लेकर केशरलाल मेरे पिता के पास आ पहुँचा और उनसे इस प्रकार कहने लगा—'नबाब साहब! यदि आप हमारा साथ नहीं देंगे तो जब तक यह लड़ाई चलेगी, तब तक मैं आपको बन्दी रखकर इस किले का अधिकार अपने हाथ में रखूंगा'

यह सुनकर पिताजी बोले—'तुम्हें यह सब करने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। मैं भी तुम्हारा साथ देने को जब तैयार हूँ। तुम निश्चिन्त रहो।'

केशरलाल ने कहा—'इस समय धन की आवश्यकता है; अतः आप खजाना खोल दीजिये।' मेरे पिता ने यह कह सुनकर बहुत थोड़ा सा धन देते हुये उत्तर दिया—'जब-जब जितनी आवश्यकता पड़ेगी, मैं देता रहूँगा इस समय इतना ही दूँगा।'

यह देखकर मेरे जितने आभूषण थे, उन सबको ने एकत्रित करके उस हिन्दुस्तानी द्वारा केशरलाल के पास भिजवा दिया। जब उन्होंने मेरे आभूषण स्वीकार कर लिये तो मेरा रोम:रोम आनन्द से पुलकित हो उठा।

केशरलाल ने पुरानी तलवारों तथा बन्दूकों की सफाई आरंभ करा दी। ठीक इसी समय जिले के अंग्रेज कमिश्नर अंग्रेजी फौज को साथ लेकर हमारे किले में आ पहुँचा, क्योंकि मेरे पिता ने उसके पास किले में विद्रोह होने का सम्बाद चुपचाप पहुँचा दिया था।

वृन्दाबन की सेना पर केशरलाल का ऐसा प्रभाव था कि उनकी आज्ञा पाकर सभी सैनिक बन्दूकों तथा पुरानी तलवारों को लेकर अंग्रेजों से युद्ध करने के लिये तैयार हो गये।

उस समय मुझे अपने विश्वासघाती पिता का घर नरक की भाँति प्रतीत होने लगा। दु:ख, लज्जा तथा क्षोभ के कारण मेरा हृदय विदीर्ण हो उठा। उस समय मैं अपने डरपोक भाई की पोशाक पहन कर, बिना किसी से कहे-सुने चुपचाप घर से निकल पड़ी।

धूल तथा बारूद के धुँये से सम्पूर्ण आकाश भर गया था। यमुना नदी के जल को रक्त-राग रंग में रँग कर भगवान् भुवन भास्कर अस्ताचलगामी हो गये थे तथा सन्ध्या के आकाश में पूर्ण चन्द्र नक्षत्रों सहित आ बिराजे थे।

युद्धक्षेत्र का दृश्य अत्यन्त भयावना था। यदि कोई अन्य समय होता तो उस दृश्य को देखकर मेरा हृदय विदीर्ण हो जाता

परन्तु उस दिन स्वप्न में खोये हुये व्यक्ति की भांति मैं सर्वत्र केवल केशरलाल को ही ढूँढ़ रही थी ।

जब रात्रि के दो प्रहर बीत गये, तब मैंने चन्द्रमा के उज्ज-वल आलोक में देखा कि रणक्षेत्र से कुछ दूरी पर यमुना नदी के किनारे आम्र-कानन की छाया में केशरलाल तथा उन के सेवक देवकी नन्दन का मृत शरीर पड़ा हुआ है । मुझे यह समझते देर न लगी कि भयानक घायल अवस्था में भगवान ने अपने भक्त को अथवा भक्त ने भगवान को रण क्षेत्र से बाहर इस निरापद-स्थान पर लाकर मृत्यु के हाथों में समर्पित कर दिया है ।

मैं वहाँ पहुँचकर पृथ्वी पर गिर पड़ी और अपने चिर-दिनों की अभिलाषित को पूर्ण करने लगी । मैंने केशरलाल के चरणों पर गिर कर अपने केश खोल दिये तथा उनसे बार-बार उनकी पद धूलि को पोंछ उठी । मैंने अपने उत्तप्त ललाट का स्पर्श उनके चरण-कमलों से कराया । फिर उनके चरणों का चुम्बन करते हुए, बहुत दिनों से रुकी हुई मेरी अश्रु धारा तीव्रगति से बह चली ।

ठीक इसी समय केशरलाल के शरीर में कुछ कम्पन हुआ । उनके कंठ से निकले हुए वेदना पूर्ण, अस्पष्ट एवं आर्त्त स्वर को सुनकर, मैं उनके चरणतल को अपने हाथ से छोड़ती हुई चौंक कर उठ बैठी । फिर मैंने उनके शुष्क कंठ से निकला हुआ एक शब्द सुना—'पानी ।'

मैं उसी समय शीघ्रता पूर्वक अपने शारीरिक वस्त्रों को यमुना के जल से भिगो लाई । फिर उन्हें निचोड़कर उसका पानी उनके मुहं में डालने लगी । जिन स्थानों पर केशरलाल के शरीर में घाव हो रहे थे, वहाँ मैंने पट्टियाँ भी बाँध दीं ।

इस प्रकार कई बार यमुना से पानी ला-ला कर मैं उनके मुँह में डालती रही । धीरे-धीरे उनकी चेतना लौट आई । तब मैंने पूछा—'और पानी लाऊँ ?"

केशरलाल ने क्षीण स्वर से पूछा—'तुम कौन हो ?'

मैं बोली—'मैं आपकी दासी नबाब कादिर खाँ की पुत्री हूँ ।' मैंने बात कह कर सोचा था कि मृत्यु के समय केशरलाल अपने अपरचित भक्त का शेष परिचय अवश्य प्राप्त करेंगे और उस सुख से मुझे कोई भी वंचित न कर सकेगा ।'

परन्तु मेरा इतना परिचय पाते ही केशरलाल सिंह की भाँति गरजते हुए बोले—'बेईमान की पुत्री, विफरणी ! तूने मृत्यु के समय यवन का पानी पिलाकर मेरा धर्म नष्ट कर दिया ।' इतना कह कर उन्होंने प्रबल शक्ति से अपने दाहिने हाथ द्वारा मेरे मस्तक पर आघात पहुँचाया । उसके लगते ही मैं मूर्छित सी होकर अपने चारों ओर अन्धकार का साम्राज्य देखने लगी ।'

मैं इस समय मन्त्र मुग्ध की भाँति बैठा था । मैं कहानी सुन रहा था अथवा संगीत का पान कर रहा था—यह ज्ञात नहीं । यह ध्यान नहीं रहा कि मेरे मुँह से अब तक एक भी शब्द न निकला था । परन्तु इतनी देर बाद अचानक ही असहिष्णु होकर बोल उठा—'पशु !'

नबाब पुत्री ने कहा—'पशु कौन ? क्या पशु मृत्यु की यन्त्रणा के समय अपने मुँह का पानी निकाल कर बाहर फेंक देता है ?'

मैं बोला—'तो क्या केशरलाल को देवता कहा जाय ?'

नबाब पुत्री बोली—'देवता क्यों ? क्या देवता भक्ति की एकाग्रचित द्वारा की गई सेवा का प्रत्याख्यान करते हैं ?'

'यह भी कौन कह सकता है'—इतना कह कर मैं चुप रह गया ।

नबाब-पुत्री बोली—'पहिले तो मैं चकित रह गई । मुझे ऐसा प्रतीत हुआ, मानो मेरे ऊपर बज्र टूट कर गिर पड़ा हो ।

तदुपरान्त कुछ चेतना प्राप्त होने पर, मैंने उस कठोर, निष्ठुर, कठिन निर्विकार परन्तु पवित्र ब्राह्मण को दूर ही से प्रणाम किया ।

मुझे मुलुंठित होकर प्रणाम करते देख उन्होंने अपने मन में क्या सोचा होगा, यह तो मैं नहीं कह सकती; परन्तु उनके चेहरे के भावों में किसी प्रकार का अन्तर नहीं आया । वे शान्त भाव से मेरी ओर देखते हुए चले गये । यमुना नदी के घाट पर एक छोटी सी नाव बंधी खड़ी थी । उस नाव पर बैठकर केशरलाल ने उसे खोल दिया । फिर देखते ही देखते वह नाव मेरी आँखों से ओझल हो गई ।'

नबाब पुत्री इतना कह कर चुप हो गई । मैंने भी कुछ नहीं कहा ।

बहुत देर बाद उसने फिर कहना आरम्भ किया—'इसके बाद की घटनायें अत्यन्त जटिल हैं । मैंने जिस जंगल के भीतर से यात्रा की और जिन मार्गों पर होकर चली क्या अब उन्हें ढूँढ़ा जा सकता है ? परन्तु जीवन के इन थोड़े से दिनों ही में मैं यह समझ गई हूँ कि असत्य अथवा असम्भव कुछ भी नहीं है । नबाब के अन्तःपुर की बालिका के लिये बाहर की दुनियाँ दुर्गम हो सकती है—यह बात काल्पनिक ही कही जायगी । एक बार निकल पड़ने पर चलने के लिए कोई न कोई रास्ता मिलेगा ही । यद्यपि वह मार्ग नबाबों का नहीं होगा । वह मार्ग ऐसा होगा, जिस पर लोग चिर-काल से चलते आये हैं । वह विचित्र और सीमाहीन अवश्य हो सकता हैं, परन्तु है तो आखिर रास्ता ही ।

मनुष्यों के चलने के इस साधारण पथ पर एक नबाब की पुत्री की सुदीर्घ यात्रा का वृत्तान्त मनोरंजक नहीं होगा । यदि हो भी, तो उन बातों की पुनरावृत्ति करने की इच्छा मुझ में नहीं है । संक्षेप में इतना ही कह सकती हूँ ।

दुख तथा कष्ट मुझे बहुत उठाने पड़े हैं, परन्तु आज तक जीवन असत्य प्रतीत नहीं हुआ। आतिशबाजी की भाँति मैं जितना अधिक जलती रही, उतनी ही अधिक उदासगति को पाती गई हूँ। जब तक वेग से चलती रही, तब तक जलती रही हूँ, ऐसा आभास मुझे नहीं हुआ। आज सहसा उस परम दुःख के महान सुख की आलोक वृत्तिका के बुझ जाने पर, पथ प्रांत की धूलि पर वह जड़ पदार्थ की भाँति गिर पड़ी है—और आज मेरी यात्रा ही समाप्त हो गई है, यही मेरी कहानी का अन्त है।'

इतना कह कर वह महिला उठ कर खड़ी हो गई और बोली—'बाबूजी ! नमस्कार।"

दूसरे ही क्षण मानो उसने संशोधन करते हुए कहा—'बाबू साहब ! सलाम।' इस मुसलमानी अभिवादन के साथ ही वह हिमालय शिखर की ओर उस कुहरे में शीघ्रता पूर्वक न जाने कहाँ अदृश्य हो गई !

मैंने जब आँखें खोलीं तो मुझे मेघ के भीतर के स्निग्ध सूर्यलोक में झिलमिलाता हुआ आकाश दृष्टिगोचर हो उठा। उस समय ठेला गाड़ी पर अंग्रेज युवतियाँ तथा घोड़े की पीठ पर अंग्रेज पुरुष वायु सेवन के लिये मार्ग पर निकल रहे थे।

मैं शीघ्रता पूर्वक उठ खड़ा हुआ। सूर्य के इस प्रकाश में वह मेघछन्न कहानी सत्य सी प्रतीत नहीं हो रही थी। मेरा विश्वास है कि मैंने पर्वत पर फैले कुहरे के साथ अपने सिगरेट की धूम्र कुण्डली को मिलाकर एक कल्पना मूर्त्ति हृदय-पट पर अंकित की थी। वह मुसलमान ब्राह्मणी, वह ब्राह्मण वीर, वह यमुना के तट का किला—परन्तु सम्भवतः यह सब कुछ भी सत्य नहीं था।

मेघदूत

१

"बाँसुरी ने मिलन के प्रथम दिन क्या कहा था ?"

उसने कहा था—"वही आदमी जो मुझ से दूर था मेरे पास आया है।"

और कहा था—"जिसे पकड़ लेने पर भी नहीं पकड़ा जा सकता, उसे पकड़ लिया है, प्राप्त कर लेने पर भी जो समस्त प्राप्तियों से दूर है, उसे प्राप्त कर लिया है।"

"उसके पश्चात् फिर नित्य बाँसुरी क्यों नहीं बजती ?"

क्योंकि आधी बात भूल जो गया हूँ। केवल यही याद रहा कि वह पास में है, लेकिन वह दूर भी है, इस बात का ध्यान ही न रहा।

मैं उसी को देखता हूँ, प्रेम के जिस आधे भाग में मिलन हो, जिस आधे भाग में विरह है, उस पर दृष्टि भी नहीं जाती इसीलिये तो दूर का चिरतृप्ति-हीन देखना अब दृष्टिगोचर नहीं होता। समीप के आवरण ने ओट कर ली है।

उस स्थान पर सब शान्त हैं, वहाँ बातचीत नहीं होतीं, जहाँ दो आदमियों के बीच में अपार-गगन है। उस गहरी शाँति को बांसुरी की मधुर-ताप से भर दिया जाता है। अपार आकाश की सन्धि न मिलती तो बाँसुरी नहीं बजती। हमारा वह बीच का आकाश

नित्य के काम-काज तथा बातचीत से नित्य की भय, चिन्ता तथा कंजूसी से भर गया है, वह आँधी से आच्छादित हो गया है।

२

कभी २ चाँदनी रात में अब शीतल वायु चलती है तब बिछुड़ने पर बैठे रहने में मन व्यथित हो उठता है। तब एक स्मरण हो जाता है कि मैंने उस पास के आदमी को तो खो ही दिया है।

यह विरह, मेरे हृदय के साथ उसके हृदय का विरह किस प्रकार समाप्त हो ?

दिन के अन्तिम-प्रहर में काम-काज से अवकाश पाकर जिसके साथ बातचीत करता हूँ, वह कौन है ? वह तो विश्व के सहस्त्रों मनुष्यों में से एक है, उसे तो मैंने जान लिया है, पहिचान लिया है, वह तो समाप्त हो चुकी है।

परन्तु, उसके अन्दर मेरी एकमात्र कमी, कमी न समाप्त होने वाली एक कहाँ है ? मैं उसे पुनः नवीन प्रकार से कहां, किस तट रहित कामना के तट पर ढूँढ़ निकालूँ ?

उसके हाथ किस समय की सन्धि में से फिर एक बार बात करूँ ? वनदेवी की सुगन्धि में, किस कर्महीन घने सन्ध्या के अन्धकार में ?

३

इतने नव-वर्षा में छाया-उत्तरीय उड़ाती हुई पूर्व-गगन में आ पहुंची। उज्जयिनी के कवि का स्मरण हो आया। सोचा-प्रिय के पास दूत भेजूँ।

मेरे गान, उड़चल, तू पास रहने के सुदूर दुर्गम निर्वासन को पार कर जा।

किन्तु, तब तो गान को काल-स्त्रोत के विरुद्ध चल कर बांसुरी के उसी व्यथित प्रथम मिलन के दिन में जाना पड़ेगा, वहीं जहां संसार की चिर वर्षा तथा चिर-वसन्त की समस्त गन्ध एवं सम्पूर्ण क्रन्दन एकत्रित होकर रह गये हैं। केतिकी वन के दीर्घः निश्वास तथा शाल-मंजरी के उतावले आत्म-निवेदन में।

प्रिय जहाँ अपने बिखरे बालों को सम्भाल कर, उन्हें बांधकर कटि से आंचल बाँधे अपने गृहकार्य में व्यस्त है वहाँ निर्जन पुष्करिणी के तटवर्ती उस नारियल वन की मर्मर मुखरित वर्षा की बात, कोई भी मेरी बात बताकर उसके कानों तक पहुँचा दे।

४

अपार गगन आज बहुत दूर के वनराज्य से नील-पृथ्वी के सिरहाने के पास झुक कर कान ही कान में बोला—"मैं तुम्हारा ही हूँ।"

पृथ्वी ने कहा—'यह कैसे? तुम तो अपार हो मैं तो छोटी हूँ।'

गगन ने कहा—'मैंने तो अपने चारों ओर मेघों की सीमा खींच दी है।'

पृथ्वी बोली—'मेरे पास तो प्रकाश की सम्पदा नहीं है, जब कि तुम्हारे पास नक्षत्रों की बड़ी सम्पत्ति है।'

गगन ने कहा—'आज तुम ही मेरी एक मात्र हो।'

पृथ्वी बोली—'तुम तो निश्चल हो; परन्तु मेरा अश्रुपूर्ण' हृदय वायु के प्रत्येक झोंके से चंचल हो काँपने लगता है।

गगन कहने लगा—'क्यों तुम देख नहीं रही हो आज मेरे अश्रु भी चंचल हो गये हैं, मेरा हृदय भी तुम्हारे उस श्यामल-हृदय की भाँति आज श्यामल हो गया है।

उसने यह कह कर गगन एवं पृथ्वी की मध्य के चिर-विरह को अश्रु गान से भर दिया ।

५

हमारे विच्छेद पर उस गगन एवं पृथ्वी के विवाह-मंत्र-गुञ्जन को लेकर नव-वर्षा उतर आई । प्रिय में जो कुछ अनिर्वचनीय था, वह सहसा वीणा के तार की तरह चौंक कर बज उठे । वह अपने मस्तक की माँग पर दूर वनान्त के रंग की भाँति नीला आँचल ढक ले । उसकी काली आँखों की दृष्टि से मेघ-मल्हार के समस्त भींड़ व्यथित हो उठे । बकुलमाला उसकी वेणी की तह तह में लिपट कर सार्थक हो उठी ।

जिस समय झींगुरों की झन्कार से वहू वन का अन्धकार थर-थर काँप रहा हो; जब वर्षा की शीतल वायु से दीप शिखा काँपते-कांपते बुझ चुके; तब तक वह अपने बहुत ही पास के उस संसार को त्याग कर भीगी घास की सुगन्धि से भरे वन-मार्ग से; मेरे एकान्त निर्जन-हृदय की श्रान्त निशा में कहीं चली न आवे ।

संस्कार SANSKAR

चित्रगुप्त पापों का हिसाब इस प्रकार बड़े-बड़े अक्षरों में अपने खाते में लिखते हैं, जिनका पता स्वयं पापियों तक को नहीं रहता। दुनियाँ में ऐसे पाप भी हुआ करते हैं जिन्हें मेरे अतिरिक्त अन्य कोई नहीं समझता। आज मैं जो बात कहना चाहता हूँ, वह इसी प्रकार की है। चित्रगुप्त के सम्मुख उत्तरदायी होने के पूर्व ही यदि उन्हें मान लिया जाय तो मैं समझता हूँ, कसूर का भार कुछ हल्का हो जायगा।

शनिवार, कार्तिक पूर्णिमा के दिन हमारे मुहल्ले में आम सड़क से जैनों का एक वृहत् जुलूस निकल रहा था। मैं अपनी पत्नी कलिका सहित मोटर में अपने मित्र नयनमोहन के घर जा रहा था, उनके यहाँ चाय का निमन्त्रण था।

मेरी स्त्री का कलिका नाम मेरे ससुर साहब ने रक्खा है। उसके लिये मैं ज़ुम्मेदार नहीं। जैसा नका नाम था, उसका स्वभाव उसके बिपरीत था। कली अपना सब कुछ छिपाये रहती है, परन्तु उसका मतामत बिलकुल स्पष्ट था। बड़ा बाजार में जब वह विदेशी कपड़े के विरुद्ध पिकेटिंग करने गयी थी, तब साथियों ने भक्तिवश उसका नाम ध्रुवव्रता रक्खा था। मेरा नाम गिरीन्द्र है। उसके बल वाले सब लोग मुझे मेरी पत्नी के पति के रूप में ही जानते थे, मेरे अपने नाम की सार्थकता पर उनका बिलकुल भी ध्यान नहीं

था । भगवान की कृपा से बाप दादों की कमाई की बदौलत मेरी भी थोड़ी बहुत सार्थकता थी, तथा उस पर लोगों की नजर सिर्फ चन्दा लेते समय पड़ती थी ।

स्त्री तथा पति के स्वभाव का मेल न होने से सूखी मिट्टी के साथ पानी का मेल शायद अच्छा होता है । मैं बहुत ही ढीली ढाली प्रकृति का हूँ । कोई भी बात हो, मैं उस पर अधिक जोर नहीं देता परन्तु मेरी पत्नी इसके विरुद्ध बहुत ही कड़ी थी । वह जिस बात को पकड़ लेती उसे किसी प्रकार भी नहीं छोड़ती थी । मेरा तो अपना पक्का विश्वास है कि हमारे घर गृहस्थी में जो शान्ति स्थिर रही, वह हम दोनों के इस वैषम्य के कारण ही ।

केवल एक स्थान पर हम दोनों में जो विरोध रह गया, वह अन्तिम समय तक भी नहीं मिटा । कलिका की धारणा थी कि मुझे अपने देश से प्रेम नहीं है । उसका अपनी इस धारणा पर अटल विश्वास था, और यही कारण है कि मैं अपने देश प्रेम को ज्यों-ज्यों समजता गया, त्यों-त्यों उसके कहे हुए बाहरी लक्षणों के साथ मेल न बैठने से वह मेरे देश-प्रेम पर सन्देह ही करती रही ।

मैं बचपन से ही अध्ययनशील रहा हूँ । कोई नई किताब निकली कि मैं तुरन्त खरीद लाया । मेरे शत्रु भी इस बात को माने बिना न रहेंगे कि मैं उनका अध्ययन भी करता हूँ । मित्र तो भली प्रकार जानते हैं कि पढ़ने के पश्चात् उनके विषय में चर्चा एवं तर्क-वितर्क किये बिना मेरा खाना ही हजम नहीं होता । यहां तक कि मेरे बहुत से मित्रों ने इस तर्क-वितर्क के प्रहार से बचने के लिये मेरा साथ ही छोड़ दिया है । उनमें से अब केवल एक ही ऐसा बचा है, जिसने हार नहीं मानी है । इतवार के दिन अब भी वनबिहारी को लेकर दरबार जमा करता है । मैंने उसका नाम कौन बिहारी रक्खा है ।

हम दोनों किसी-किसी दिन छत के एक कौने में बैठकर बातचीत में इतने खो जाते कि रात के दो-दो बज जाते। हम जिन दिनों उस नशे में चूर थे। वे दिन अच्छे नहीं थे। वह समय ऐसा था कि यदि पुलिस किसी के घर गीता देख लेती तो उसे राजद्रोह का सबूत सिद्ध करने में देर नहीं लगती थी।

उस जमाने के देशभक्त ऐसे थे कि यदि किसी के घर विदेशी पुस्तक का कोई फटा हुआ पन्ना भी पालें तो वे उसके मालिक को देश द्रोही समझ लेते थे। वे लोग मुझ को स्याह रंग का पलस्तरदार श्वेत द्वैपायन बाँधते थे।

मेरी बात को कोई झूँठ न समझते तो मैं यही कहूँगा कि उन दिनों के देशभक्तों ने सरस्वती का रंग श्वेत होने के कारण उनकी पूजा करना छोड़ दिया था। लोगों ने अपनी ऐसी धारणा बना ली थी कि जिस सरोवर में उनका श्वेत कमल खिलता है, उसके पानी से देश की तकदीर को जलाने वाली आग बुझती नहीं बल्कि और धधक उठती है।

अपनी पत्नी की ओर से निरन्तर सब दृष्टान्त ताकीदों के बावजूद भी मैंने खादी नहीं पहिनी। इसका कारण यह नहीं था खादी में कोई दोष है या गुण नहीं है, या मैं पहिनने ओढ़ने में अधिक शौकीन हूँ। इससे बिलकुल उल्टी बात थी, स्वदेशी चाल चलने के खिलाफ मैंने बहुत से कसूर किये होंगे, परन्तु सफाई उनमें शामिल नहीं थी। ढीला-ढाला रहन-सहन तथा मैली-मोटी पोशाक मेरे स्वभाव में सम्मिलित है कलिका की भाव-धारा में स्वदेश-प्रेम की बाढ़ आने से पूर्व मैं चौड़े पञ्जे के सादा जूते पहना करता था तथा उन पर रोज-रोज पोलिश करना भी भूल जाता था। मोजे पहनने को एक परेशानी समझता कमीज कोट न पहनकर एक साधारण सा कुर्त्ता पहनने में मुझे आनन्द मिलता और उसके दो-एक बटन

जो कम रहते, उनका भी ख्याल नहीं करता था। हमारी-तुम्हारी दृष्टि में यह सब बातें साधारण भले ही न हों, परन्तु भगवान् झूठ न बुलवाये, मुझे अपने दाम्पत्य-जीवन में चिर-विच्छेद होने का डर लगता था। कलिका हमेशा यही कहा करती—'देखो, मुझे तुम्हारे साथ कहीं बाहर जाने में बड़ी शर्म मालूम पड़ती है।' मैं कहता 'तुम्हें मेरी अनुगामिनी बनने की आवश्यकता नहीं है, तुम मुझे छोड़-कर इच्छानुसार जहाँ चाहो जा सकती हो।'

आज समय बदल गया है, परन्तु मेरी किस्मत नहीं बदली है। कलिका आज भी वही बात कहती है—'मुझे तुम्हारे साथ वहाँ जाने में शर्म मालूम पड़ती है।' कलिका पहिले जिस दल में सम्मि-लित हुई थी, मैंने उसकी वर्दी नहीं पहनी और आज भी वह जिस दल के साथ है उसकी वर्दी भी मुझसे ग्रहण नहीं की जा सकी है। मेरी स्त्री की शर्म मेरे बारे में ज्यों की त्यों बनी रही, इसे मेरे ही स्वभाव का दोष समझना चाहिये। मुझे भेष धारण करने में संकोच होता है, चाहे वह किसी भी दल का क्यों न हो। मैं उस संकोच को किसी प्रकार भी दूर न कर सका। तब कालिका भी उधर आपस का मतभेद समाप्त करके, मेरे रहन-सहन को सहन न कर सकी। जिस प्रकार झरने की धारा घूम फिर कर पत्थर पर बार-बार चोट करके उसे धकेलने का व्यर्थ प्रयत्न करती है, उसी प्रकार कलिका से भी भिन्न रुचि वालों पर चलते-फिरते दिन-रात चोट पहुँचाये बिना नहीं रहा जाता। उसकी रगों में भिन्न राय नाम की वस्तु का स्पर्श लगते ही मानो सुर-सुरीसी उठ खड़ी होती और वह उससे बेचैन हो जाती।

कल चाय के निमन्त्रण में जाने के पूर्व कलिका ने मेरी खादी-हीन पोशाक पर कम से कम एक बार, एक हजार एक बार आपत्ति की होगी। तारीफ यह कि उसमें मिठास नाम मात्र को भी

नहीं थी। मैं भी कुछ बुद्धि का अभिमान होने के कारण उसकी डाट-फटकार को बिना तर्क के मान न सका। आश्चर्य, यह स्वभाव की प्रेरणा मनुष्य को कैसे-कैसे व्यर्थ के प्रयत्नों में उत्साहित किया करती है। मुझ से भी एक हजार एक उत्तर दिये बिना न रहा गया। मैं भी कलिका को बराबर चुटकियाँ ले-ले कर उत्तर देता गया—'स्त्रियाँ बिधाता द्वारा दी हुई आँखों पर स्याह किनारी की साड़ी का मोटा घूँघट खींच कर, आचार के साथ आंचल का गठ-बन्धन करके चला करती हैं। उन्हें मनन की अपेक्षा मानने में ही अधिक सुख मिलता है। उन्हें तब तक चैन नही पड़ता, जब तक वे जीवन के सभी चलन व्यौहारों को रुचि और बुद्धि से स्वाधीन क्षेत्र से घसीटकर, संस्कार के जनानखाने में ले जाकर पर्दानसीन नहीं बना डालतीं। आचार-विचारों से जर्जरित हमारे इस देश में खादी पहनना, माला तिलकधारी धार्मिकता की भाँति ही एक संस्कार सा बन गया है, स्त्रियों को इसीलिये उससे इतनी प्रसन्नना होती है—इत्या ।

कलिका देवी गुस्से के मारे तमतमा उठीं। उनकी आवाज सुनकर पड़ोस के मकान की नौकरानी तक समझ गई कि पति ने स्त्री की इच्छानुसार पूरे वजन के गहने गढ़ा देने में अवश्य धोखा दिया है। कलिका बोली—'देखो, जिस दिन खादी पहनने की पवित्रता गंगा-स्नान की भांति देश के लोगों के हृदय में संस्कार बनकर बैठ जायेगी, देश उसी दिन पुनः जीवित हो सकेगा। जब विचार स्वभाव के साथ घुल मिल कर एक हो जाते हैं। जब विचार-आचार में दृढ़ता का रूप धारण कर लेते हैं, तभी उन्हें संस्कार कहा जाता है। उस समय मनुष्य आँख मीच कर काम करता है, तुम्हारी यह आँखें खोलकर द्विविधा में डामाडोल नहीं रहता।' यह शब्द अध्यापक नयन मोहन के कहे हुये आप्त वाक्य

हैं। इसमें उग्रता के चिह्न सिर्फ घिस गये हैं। परन्तु कलिका देवी इन्हें अपने निजी विचार समझती हैं।

जिन विद्वान ने यह कहावत प्रचलित की थी कि गूँगे के दुश्मन नहीं होते, अवश्य ही अविवाहित थे। मैंने कोई उत्तर दिया तो कलिका दूने जोश से बोली—'वर्णभेद कोई तुम केवल मुँह से ही नहीं मानते, व्यवहार में उसे कभी लाते नहीं देखा। हम लोगों ने खादी पहन कर आवरण भेद को उठाकर वर्णभेद की खाल उधेड़ दी है, उस भेद भाव पर अखण्ड श्वेत रंग चढ़ा दिया है।'

मैं कहना ही चाहता था—'जब से मुसलमान के हाथ का बना मुर्गी का शोरबा खाने लगा हूँ, तभी से मुँह से वर्णभेद को भी नहीं मानता और यह मेरा कंठस्थ वाक्य नहीं अपितु कंठस्थ कार्य है; जिसकी गति भीतर की ओर है। इसके विपरीत तुम्हारा जो वर्णभेद का ढकना है वह बाहरी चीज है। उससे सिर्फ ढांका ही जा सकता है, धो-पोंछ कर मिटाया नहीं जा सकता।' परन्तु कहने का मेरा साहस नहीं हुआ। मैं कायर-पुरुष ठहरा, अस्तु चुप रह गया; क्योंकि जानता हूँ, परस्पर जिन युक्तियों के बल-पर बहस छेड़ी जाती है, कलिका उन्हें धोबी के घर के कपड़ों की तरह भट्टी चढ़ाकर अपने मित्रों के घर ले जाकर उखाड़-पछाड़ कर साफ कर लाती हैं। भारतीय दर्शन के अध्यापक नयनमोहन के यहाँ से प्रतिपाद लाकर वह मुझे सुनाती है तथा अपने चमकते हुये नेत्रों की नीली भाष में मुझ से कहती है —'क्यों, अब अकल ठिकाने पर आई ?

मेरी नयनमोहन के यहाँ जाने की बिलकुल भी इच्छा नहीं थी। मैं निश्चय पूर्वक जानता था कि वहाँ चाय की मेज पर गर्म चाय के धुयें की भांति ही इस विषय की सूक्ष्म चर्चा छिड़े बिना न रहेगी कि हिन्दू संस्कृति एवं स्वाधीन बुद्धि, आचार-विचार का

आपेक्षिक स्थान क्या है, और उस आपेक्षिकता ने हमारे देश को अन्य समस्त देशों से ऊँचा स्थान क्यों दिया है। इससे वहाँ का वातावरण गीला और धुँधला हो जावेगा। उधर सुनहरी जिल्दों से सुशोभित अखंडित पत्रवती पुस्तकें दूकान से आकर मेरे तकिये के पास प्रतीक्षा कर रही थीं। अभी केवल शुभ दृष्टि ही हुई है। उनके ब्राउन-रैपरों के घूँघट पट अभी नहीं खुले। उनके सम्बन्ध में मेरा पूर्वराग हृदय के अन्दर क्षण-क्षण में प्रबल होता जा रहा था। फिर भी पत्नी के साथ बाहर जाना पड़ा क्योंकि ध्रुववता का इच्छावेग चकारा जाने से वह उसके वाक्य और अवाक्य में एक तूफानी भँवर बन जाता है और उसका चक्कर मेरे लिये किसी भाँति भी स्वास्थ्यप्रद नहीं रहता। मोटर घर से निकल कर गली पार करती हुई सड़क पर पहुँच भी न पाई थी कि देखा, सामने हलवाई की दुकान के आगे भीड़ जमा है और शोर हो रहा है। हमारे पड़ोस के मारवाड़ी भिन्न-भिन्न प्रकार की बहुमूल्य पोशाकें पहन कर उस जुलूस में सम्मिलित होने जा रहे थे। मेरी मोटर सामने भीड़ देखकर रुक गई। सुना—लोग 'मारो-मारो' चिल्ला रहे हैं। मैंने समझा कि कोई जेबकट पकड़ा गया होगा।

मोटर अपना होर्न बजाती हुई धीरे-धीरे आगे बढ़कर, जब उस उत्तेजित जनता के पास पहुँची तो देखा कि लोग हमारे मोहल्ले के बूढ़े सरकारी मेहतर को पीट रहे हैं। वह गली के सरकारी नल से बाल्टी भर कर झाड़ू बगल में दबाये जा रहा था कि किसी छू गया। उसके साथ उसका आठ साल का नाती था। नाती रो-रो कर अपने बाबा को छोड़ देने की प्रार्थना कर रहा था। दोनों ही साफ कपड़े पहने हुए थे और देखने में भी तन्दुरुस्त मालूम पड़ते थे। बूढ़ा मेहतर कह रहा था—'हुजूर माफ कीजिये, गल्ती हो गई।' परन्तु इससे अहिंसा मानने वाले, पुण्यार्थियों का क्रोध कम

होने की बजाय और भी अधिक बढ़ता जाता था। बूढ़े की आँखों से आँसू बह रहे थे तथा ठोढ़ी से टप-टप खून गिर रहा था।

मैं इसे सहन न कर सका। मेरे लिये उनके साथ झगड़ने के लिये उतरना सम्भव न था। मैंने निश्चय किया कि उस बूढ़े मेहतर और उसके नाती को अपनी मोटर में बैठाकर दूर ले जाकर छोड़ दूँ तथा अपनी सहधर्मिणी को दिखा दूँ कि मैं उसके तथा कथित दल में नहीं हूँ। कलिका मेरी चंचलता देखकर मेरे मन की बात समझ गई। उसने मेरा हाथ कस के पकड़ लिया और बोली–'यह तुम क्या कर रहे हो? यह मेहतर है।'

मैंने उत्तर दिया—'मेहतर हैं तो क्या वे लोग इसे मारेंगे?'

कलिका बोली—,अपराध तो इसी का है। बीच रास्ते से क्यों चलता है? उससे एक किनारे से बच कर नहीं चला जाता?'

मैंने कहा—'यह मैं कुछ नहीं जानता। मैं उसे मोटर में बैठाकर ले चलूँगा।'

कलिका बोली—तो मैं यहीं गाड़ी से उतरी जाती हूँ। तुम मेहतर को गाड़ी में नहीं चढ़ा सकते। आखिर मेहतर है। चमार कोरी होता तो बात भी थी।'

मैंने कहा—'होने दो मेहतर, देखती नहीं—साफ-सुथरे कपड़े पहने है? नहा-धो चुका है। इन में से बहुतों से साफ-सुथरा है।'

'इससे क्या हुआ, वह है तो मेहतर ही।' इतना कहकर कलिका ने ड्राइवर को आज्ञा दी 'गंगादीन गाड़ी ले चलो।'

मेरी हार हुई, मैं कायर हूँ।

नयनमोहन ने उस दिन अपनी गंभीर युक्तियों द्वारा अपेक्षा-वाद की बाल की खाल निकाल कर रख दी। परन्तु उन में से एक भी बात मेरी समझ में नहीं आई, और न मैंने उसका कोई उत्तर ही दिया।

दुर्भाग्य चक्र

कालीपद की माँ का नाम था रासमणि। वह माँ तो थी ही, परन्तु उन्हें वाध्य होकर पिता के पद का भार भी उठाना पड़ा था। क्योंकि माता-पिता दोनों के ही माँ बन जाने से बालक को सुविधा नहीं होती। रासमणि के पति भवानीचरण अपने पुत्र को अपने काबू में बिलकुल ही नहीं रख सकते थे। वे अपने लड़के पर इतना अधिक दुलार क्यों करते हैं, यह प्रश्न पूछे जाने पर उनका जो उत्तर होता, उसे भली भाँति समझने के लिये पहले का इतिहास जान लेना आवश्यक है।

घटना यह है—भवानीचरण का जन्म शनियाड़ी के सुप्रसिद्ध पुराने धनी वंश में हुआ था। भवानीचरण के पिता का नाम था अभयाचरण। उनके पहले विवाह की पत्नी से जो पुत्र हुआ, उसका नाम श्यामाचरण था। बड़ी आयु में पत्नी की मृत्यु हो जाने पर ही अभयाचरण ने अपना दूसरा विवाह किया था। इस विवाह के समय उनके दूसरे श्वसुर ने उनका एक इलाका भी अपनी कन्या के नाम विशेष रूप से लिखवा लिया था। ऐसा इसलिये हुआ था कि उन्होंने अपने दामाद की आयु का हिसाब लगा कर मन ही मन यह निश्चय किया था, कि यदि उनकी लड़की कभी विधवा हो जाय तो उसे खाने पीने तथा पहनने के लिये अपनी सौत के लड़के के अधीन न रहना पड़े।

उन्होंने जो भी कल्पना की थी, उसके पहले अंश के सफल होने में कुछ अधिक विलम्ब नहीं हुआ। उनके देखते भवानीचरण का जन्म होने के पश्चात् कुछ दिनों बाद ही उनके दामाद की मृत्यु हो गई। उस समय उस विशेष सम्पत्ति पर पर उनकी कन्या का अपना अधिकार हो गया। इस सब घटना को अपनी आँखों के सामने देख लेने के कारण ही उन्हें अपनी मृत्यु के समय कन्या के इहलोक के सम्बन्ध में बहुत कुछ निश्चिन्तता होगई थी।

उस समय श्यामाचरण की आयु भी काफी थी। यहाँ तक कि श्यामाचरण का बड़ा लड़का उम्र में भवानीचरण से एक वर्ष बड़ा था। श्यामाचरण अपने लड़कों के साथ ही साथ भवानीचरण का भी पालन-पोषण करने लगे। भवानीचरण की माता की जो अपनी विशेष सम्पत्ति थी, उसमें से उन्होंने अपने लिये कभी भी एक पैसा भी नहीं लिया। प्रत्येक वर्ष उस सम्पत्ति का जो हिसाब होता, उसे वह ईमानदारी के साथ साफ करके अपनी विमाता से रसीद ले लिया करते थे। उसकी इस ईमानदारी को देखकर सभी लोग उनकी प्रशंसा किया करते थे।

प्रायः सभी लोग यह समझते थे कि इतनी ईमानदारी भी अनावश्यक है। यहाँ तक कि उसे एक प्रकार की मूर्खता कहना ही लोगों को अधिक पसन्द था। गाँव के किसी भी आदमी को यह बात अच्छी नहीं लगती थी, कि अखण्ड पैतृक सम्पत्ति का एक विशेष भाग दूसरे विवाह की स्त्री के पास बना रहे। यदि श्यामाचरण अपने किसी छल-कपट द्वारा उस सम्पत्ति के दस्तावेज को नष्ट कर देते तो पड़ोसी लोग उनके इस पौरुष की प्रशंसा करने में कभी नहीं चूकते तथा वह कार्य जिस सुन्दरता पूर्वक सम्पन्न किया जा सकता था, उसके लिये एक से एक अधिक श्रेष्ठ परामर्श देने वाले चतुर व्यक्तियों का भी कोई अभाव नहीं था। परन्तु इतने

पर भी श्यामाचरण ने पुरातनकाल के परिवार को विच्छिन्न करके भी अपनी विमाता की विशेष सम्पत्ति को ज्यों का त्यों स्वतन्त्र रहने दिया।

इसीलिये, और कुछ अपने स्वाभाविक स्नेह के कारण, विमाता ब्रजसुन्दरी श्यामाचरण पर अपने पुत्र के समान ही स्नेह रखती थीं तथा उनके ऊपर पूरा विश्वास करती थीं। श्यामाचरण जो उनकी सम्पत्ति को बिलकुल अलग रूप में देखते थे, उसके लिये उन्होंने अनेक बार उनकी भर्त्सना भी की थी। वे बोलीं थीं – "बेटा, यह सब तुम्हारी ही तो सम्पत्ति है, मैं इसे अपने साथ लेकर तो जाऊँगी नहीं। यह तुम्हारी ही रहेगी। अतः मुझे इतना हिसाब-किताब देखने की क्या आवश्यकता है ?" परन्तु श्यामाचरण उनकी बातों पर जैसे कोई ध्यान ही नहीं देते थे।

श्यामाचरण अपने पुत्रों पर बहुत कड़ा अनुशासन रखते थे। परन्तु भवानीचरण के ऊपर उनका कभी कोई अनुसाशन नहीं रहा। उनके इस व्यवहार को देखकर सभी लोग एक स्वर से यह कहते थे, कि अपने पुत्रों की अपेक्षा श्यामाचरण भवानी के ऊपर ही अधिक स्नेह रखते हैं। उनके इस प्रेमपूर्ण व्यवहार के कारण भवानीचरण कुछ भी लिख-पढ़ नहीं सका। दुनियाँदारी के मामलों में वह निरा बच्चा ही बना रहा। वह अपने बड़े भाई के ऊपर पूरी तरह से निर्भय होकर अपना जीवन बिताने लगा। घर के काम धन्धों के सम्बन्ध में उसे कोई चिन्ता नहीं रखनी पड़ती थी। केवल कभी-कभी किसी कागज पर हस्ताक्षर भर कर देने पड़ते थे। वे हस्ताक्षर क्यों कर रहे हैं, इसे समझने की उन्होंने कभी कोई चेष्टा नहीं की। क्योंकि चेष्टा करने पर सफलता मिलना असम्भव था।

इधर श्यामचरण का बड़ा पुत्र तारापद सभी कामों में अपने पिता का सहकारी रहा था, इसलिये वह खूब पक्का बन गया था।

जब श्यामाचरण की मृत्यु हो गई तब एक दिन तारापद भवानी-चरण से बोला—'चाचा जी ! अब हम लोगों के एक हाथ रहने से काम न चल सकेगा। क्या पता किसी दिन किसी मामूली कारण से ही हम लोगों में मतभेद उपस्थित हो गया तो उस समय यह सम्पूर्ण गृहस्थी चौपट हो जायेगी।'

अलग हो जाने पर अपनी जायदाद की देखभाल स्वयं करनी पड़ेगी, इस बात को भवानीचरण ने स्वप्न में भी नहीं सोचा था। वे बचपन से ही जिस गृहस्थी में पल कर बड़े हुये थे, उसे वे पूर्ण-तथा अखण्ड ही समझे थे। उसमें किसी स्थान पर कोई जोड़ है और उस जोड़ को हटा कर दो टुकड़े बना दिये जायेंगे, इस समा-चार को अचानक ही पाकर वे चिन्तित हो उठे।

वंश की प्रतिष्ठा की हानि तथा आत्मीयजनों की हार्दिक वेदना जब तारापद को लेशमात्र भी विचलित नहीं कर सकी, उस समय जायदाद का बटवारा किस प्रकार हो, इस असाध्य चिन्ता में भवानीचरण को विवश होकर डूब जाना पड़ा। उनकी चिन्ता को देख कर तारापद ने मानो अत्यन्त आश्चर्य में भर कर कहा–'चाचा जी ! आप इतने चिन्तित क्यों हो रहे हैं ? जायदाद तो बटी हुई है ही। दादाजी अपनी जीवित अवस्था में ही सब बटवारा कर गये थे।'

भवानीचरण ने आश्चर्य में भर कर कहा—'क्या तुम सच कह रहे हो ? मैं तो इस सम्बन्ध में कुछ भी नहीं जानता।'

तारापद बोला—'यह भी खूब रही ! आप जानते भी नहीं, यह क्या बात है ? गाँव के सभी लोग जानते हैं कि पीछे आप लोगों के साथ हम लोगों का कोई झगड़ा खड़ा न हो जाय। इस-लिये दादाजी ने अलन्दी का इलाका पहले से ही अलग कर दिया था—उसी के अनुसार आज तक सब काम चलता आया है।'

भवानीचरण ने सोचा—यह ठीक हो सकता है। फिर पूछा—'और यह मकान ?'

आप चाहें तो इस मकान को अपने पास ही रख सकते हैं। सदर के महकमे में जो कोठी है, उसे पा लेने से हम लोगों का काम किसी प्रकार चल जायेगा। तारापद ने उत्तर दिया।

तारापद इतनी सरलतापूर्वक पैतृक घर को छोड़ने के लिये प्रस्तुत हो जायेंगे, भवानीचरण को स्वप्न में भी इसकी कल्पना नहीं थी। अस्तु वे उनकी उदारता पर आश्चर्यचकित रह गये। सदर महकमे के मकान को उन्होंने कभी देखा तक नहीं था, अस्तु उसके प्रति उन्हें कोई ममत्व भी नहीं था।

जिस समय भवानीचरण ने अपनी माता ब्रजसुन्दरी को सब हाल सुनाया तो वे अपने माथे को ठोकती हुई बोलीं—'अरी माँ ! यह कैसा आश्चर्य है ? अनन्दी का इलाका तो मुझे स्त्री-धन के रूप में भरण-पोषण के रूप में मिला था, उसकी आमदनी भी अधिक नहीं है। पैतृक सम्पत्ति में तुम्हारा जो हिस्सा है उसे तुम क्यों नहीं प्राप्त करोगे ?'

भवानी ने उत्तर दिया—'तारापद का कहना है–पिताजी ने उस इलाके के अतिरिक्त हम लोगों को और कुछ नहीं दिया था।'

ब्रजसुन्दरी बोली–'मैं इस बात को कैसे मान लूँ ? मालिक ने अपने हाथ से वसीयत नामे को दो कागजों पर लिखा था। उनमें से एक कागज अभी तक मेरे सन्दूक में रक्खा है।'

सन्दूक खोलने पर देखा गया—अनन्दी गाँव का दान-पत्र तो उसमें था, परन्तु वसीयतनामा का कोई पता न था। यह देखकर भवानीचरण ने अपने गुरू के लड़के बगलाचरण को परामर्श के हेतु बुलाया। बगलाचरण बहुत बुद्धिमान समझा जाता था। उसके पिता गाँव के मन्त्रणादाता थे और वह स्वयं मन्त्रणादाता था।

इस प्रकार पिता-पुत्र ने गाँव के परकाल तथा इहकाल का बटवारा कर रक्खा था। दूसरों के लिये उनके कार्य का फलाफल चाहे जो रहा हो परन्तु उन्हें स्वयं कोई असुविधा कभी नहीं हुई थी।

बगलाचरण बोला—'वसीयतनामा नहीं मिल रहा तो नहीं सही। पिता की सम्पत्ति में दोनों भाईयों का समान भाग अवश्य रहेगा।'

ऐसे ही समय में दूसरे पक्ष को एक वसीयतनामा कहीं से प्राप्त हो गया। उसमें भवानीचरण के भाग के सम्बन्ध में कुछ नहीं लिखा था। समस्त सम्पत्ति पौत्रों को ही दी गई थी। जिस समय का वह वसीयतनामा था उस समय तक अभयाचरण को कोई पुत्र नहीं हुआ था।

बगलाचरण तो कर्णधार बना कर भवानीचरण ने मुकद्दमा रूपी समुद्र की यात्रा आरम्भ कर दी। बन्दरगाह पर पहुँच जाते पर जब लोहे के सन्दूक की जाँच की गई तो लक्ष्मी वाहन का आवास बिलकुल खाली मिला—केवल सोने के दो-तीन पंख ही पड़े हुए थे। पैत्रिक सम्पत्ति विपक्षी के हाथ में चली गई। मुकद्दमे के खर्च के बाद आनन्दी का जो भाग बच गया था उसकी आय से किसी प्रकार गुजारा तो हो सकता था परन्तु वंश मर्यादा की रक्षा नहीं हो सकती थी। पुराने मकान को पाकर भवानी चरण ने समझा—मेरी विजय ही हुई है। तारापद का दल सदर चला गया तब से फिर दोनों पक्षों में भेंट नहीं हुई।

२

श्यामाचरण के विश्वासघात ने ब्रजसुन्दरी को भाले की भाँति भेद दिया था। श्यामाचरण ने वसींयतनामे को धोके से गायब किया तथा अपने भाई को ठग कर पिता के विश्वास को भं

किया । इस बात को वे किसी भी प्रकार नहीं भूल सके । जब तक वे जीवित रहीं तब तक दीर्घ श्वास लेकर यही कहती रहीं—'धर्म की अवश्य विजय होगी, अन्याय अधिक दिनों तक स्थिर नहीं रह सकता ।' वे भवानीचरण को प्राय: प्रतिदिन आश्वासन देती हुई कहतीं कि अदालत के कानून को मैं नहीं मानती; परन्तु तुम्हें यह अवश्य बताये देती हूँ कि मालिक का वसीयतनामा सदैव नहीं दबा रहेगा । एक न एक दिन तुम उसे अवश्य प्राप्त कर लोगे ।

माता की बात सुनकर भवानीचरण को बड़ी सांत्वना मिलती थी । वे स्वयं असमर्थ थे, परन्तु ऐसा आश्वासन उन्हें सन्तोष प्रदान करता था । साधू माता की बात किसी दिन अवश्य सत्य होगी तथा जो चीज इनकी है वह स्वयंमेव इनके पास चली आयेगी—इस बात को निश्चित मानकर वे शान्त बैठे रहे । माता की मृत्यु के बाद उनका यह विश्वास और अधिक दृढ़ हो गया-क्योंकि मृत्यु के पश्चात् माता का पुण्य तेज उनके सामने और अधिक बड़े आकार में प्रकट हो उठा । दरिद्रता का सम्पूर्ण अभाव किसी भरोसे पर उनके शरीर पर कोई प्रभाव नहीं डालता था । वे समझते थे, यह जो अन्न-वस्त्र का कष्ट हो रहा है, तथा पहिले चाल चलन में फर्क पड़ने लगा है, यह कुछ ही दिनों का अभिनय मात्र है । यह किसी भी तरह चिरसत्य नहीं हो सकता है । इसीलिये पहिले की ढाके की धोतियों के फट जाने पर जब उन्होंने कम मूल्य की मोटी धोती खरीदी, तो उन्हें मन ही मन हँसी आने लगी । दुर्गापूजा के समय भी पहले जैसी धूमधाम नहीं हुई, केवल नमोनम: कह कर ही काम चलाना पड़ा । जो लोग पूजा देखने के लिये आये थे उन्होंने लम्बी स्वाँसें लेते हुए पुराने समय की चर्चा छेड़ी । परन्तु भवानीचरण ने मन ही मन हँसते हुए यह कहा—'ये लोग यह नहीं जानते कि यह सब थोड़े ही दिनों का संकट है । कुछ दिनों बाद ऐसी धूमधाम से

पूजा होगी कि इन लोगों की आँखें खुल जांयगी । भविष्य के निश्चित समारोह को इस प्रकार प्रत्यक्ष की भाँति देखते हुए कि वर्तमान दैन्य उनकी दृष्टि से ओझल हो जाता था ।

इस विषय की आलोचना में भाग लेने वालों में उनका सेवक नटविहारी प्रमुख था । पूजा के उत्सव में दरिद्रता के बीच बैठे हुए ये दोनों सेवक तथा स्वामी यह विचार किया करते थे कि भविष्य में अच्छे दिन आने पर पूजा का समारोह किस प्रकार किया जायगा । उस समय किन लोगों को निमंत्रण दिया जायगा, और किन को नहीं । कलकत्ते से धार्मिक गायन मंडली बुलाई जायगी अथवा नहीं । इन सब बातों पर दोनों में बहुत तर्क-वितर्क होता रहता था । सामग्री एकत्रित करने के व्यय के हेतु जो सूची तैयार की जाती थी, उसमें अपनी स्वाभाविक अनुदारता के कारण नटबिहारी जब काट छाँट करने लगता था उस समय भवानीचरण उसे झिड़क दिया करते थे ।

कहने का तात्पर्य यह है कि धन सम्पत्ति के सम्बन्ध में भवानीचरण के हृदय में कोई चिन्ता नहीं थी । उनकी घबराहट का यदि कोई कारण था तो केवल यही कि उस धन का उपभोग कौन करेगा । आज तक उन्हें कोई सन्तान नहीं हुई । कन्याभार से दबे हुए अनेक हितैषियों ने उनका दूसरा विवाह करने के लिये कई बार अनुरोध किया था । उसे सुनकर कभी-कभी उनका हृदय चञ्चल हो उठता था, इसका कारण यह कभी नहीं था कि नववधू प्राप्त करने की उन्हें कोई इच्छा थी—अपितु वे सेवक तथा चावल की भाँति स्त्री को भी पुरानी अवस्था में ही श्रेष्ठ समझते थे—परन्तु जिसे ऐश्वर्य प्राप्ति की सम्भावना हो, उसे सन्तान प्राप्ति न होने से एक विषम विडम्बना के रूप में देखते थे ।

ऐसे समय जब उनके घर एक पुत्र ने जन्म लिया तो सब

लोग यह कहने लगे, अब इस घर का भाग्य अवश्य लौटेगा। मालिक अभयाचरण ने ही इस घर में फिर जन्म लिया है। बालक की आँखें उसी प्रकार बड़ी बड़ी हैं। जन्म कुण्डली में ग्रहों का मेल जोड़ भी ऐसा बैठा है जिससे छिनी हुई सम्पत्ति के उद्धार की पूर्ण आशा है। पुत्र उत्पन्न होने के पश्चात भवानीचरण के व्यवहार में परिवर्तन दिखाई देने लगा। अब तक वे दरिद्रता को खिलवाड़ की भाँति तुच्छ समझते आये थे, परन्तु बालक के सम्बन्ध में वे उस भाव को स्थिर न रख सके। शनियाडी के सुप्रसिद्ध चौधरी वंश में जो शिशु कुलप्रदीप को उज्ज्वल रखने के हेतु सभी ग्रह-नक्षत्रों की आकाशव्यापी अनुकूलता को ग्रहण कर धराधाम पर अवतीर्ण हुआ है उसके प्रति एक कर्तव्य तो होना चाहिये? पिछले समय से परिवार में पुत्र को जन्म से ही जैसा आदर सत्कार मिलता आया है, उससे भवानीचरण का पुत्र पहिले-पहल वंचित हुआ, इस वेदना को वे किसी भी प्रकार नहीं भुला सके। 'इस वंश की चिरप्राप्त वस्तु को मैं अपने पुत्र को नहीं दे सका,' इसका स्मरण कर उनके हृदय में बारम्बार यह विश्वास होने लगा कि मैंने ही इसे धोका दिया है इसलिए कालीपद के सम्बन्ध में जो कार्य वे रुपये-पैसे खर्च करके नहीं कर सके, उस अभाव को वे पूरा सम्मान देकर दूर करने की चेष्टा में जुट गये।

भवानीचरण की पत्नी रासमणि का स्वभाव सर्वथा भिन्न था। उन्होंने सनियाडी के चौधरी वंश के पुरातन गौरव के सम्बन्ध में कभी भी घबराहट का अनुभव नहीं किया था। इनके स्वभाव से भवानीचरण परिचित थे, अस्तु वे उनके सम्बन्ध में यह सोचा करते थे कि साधारण दरिद्र वैष्णव वँश में उत्पन्न इस नारी की कृतयों के लिये इसे क्षमा कर देना ही उचित है, क्योंकि चौधरी वंश की मानमर्यादा के सम्बन्ध में इसकी धारणा कभी भी ठीक नहीं हो सकती थी।

इस बात को रासमणि स्वयं ही स्वीकार करती थीं । वे कहती थीं—'मैं गरीब की पुत्री हूँ, मान प्रतिष्ठा का मोह मुझे नहीं है, कालीपद जीवित रहे, यही मेरे लिये सबसे बड़ा सौभाग्य है ।' वसीयतनामा फिर मिल सकता है और उसके द्वारा कालीपद के सौभाग्य से विगत वैभव पुनः लौट कर आ सकता है । इन सब बातों पर इनका ध्यान नहीं था । भवानीचरण प्रत्येक व्यक्ति से अपने खोये हुए वसीयतनामे के सम्बन्ध में आलोचना करते थे । परन्तु यह चर्चा वे अपनी स्त्री के सम्मुख कभी नहीं कर पाते थे । एक आध बार उन्होंने इस सम्बन्ध में कुछ कहने की चेष्टा भी की परन्तु उनके उत्साह को कोई बल नहीं मिला । भूत की महिमा तथा भविष्य की महिमा—उन दोनों ही बातों पर उनकी स्त्री तनिक भी ध्यान नहीं देती थी । उसका चित्त तो सदैव सामने वाली बात पर ही लगा रहता था ।

रासमणि की यह आवश्यकता भी कोई कम नहीं थी । बड़ी मितव्ययता से उन्हें गृहस्थी को चलाना पड़ता था । लक्ष्मी स्वयं तो चली जाती है परन्तु अपना कुछ न कुछ बोझ फिर भी छोड़ जाती है । उस समय उपाय के स्थान पर केवल उपाय ही रह जाता है । इस परिवार का आश्रय यद्यपि टूट चुका था फिर भी आश्रित दल उन्हें छुटकारा नहीं पाने देना चाहता था । भवानी-चरण भी इस प्रकार के आदमी नहीं थे कि वे अभाव के भय से किसी को हटा दें ।

इस भार सदृश टूटी हुई गृहस्थी के चलाने का पूरा बोझ रासमणि पर था । उन्हें किसी दूसरे से विशेष सहायता भी नहीं मिलती थी । जब घर के दिन अच्छे थे तब सभी आश्रित आराम तथा आलस्य में समय बिताते रहते थे । उन लोगों की सुख शैया के ऊपर चौधरी वंश के महावृक्ष की छाया स्वयं ही फैलती रहती

थी तथा उनके मुँह में पके हुए फल स्वयं ही टपक पड़ते थे। अस्तु, उस समय किसी को तनिक प्रयत्न करने की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। परन्तु अब यदि इनसे किसी प्रकार का काम करने के लिये कहा जाता है उसमें वे अपना बड़ा अपमान समझते हैं। रसोई घर के धुंआ मात्र लगने से ही उनके मस्तक में दर्द होने लगता है तथा चलने फिरने की आवश्यकता होने पर ये गठिया की बीमारी से ग्रस्त हो जाते हैं। भवानीचरण भी यह कहा करते हैं कि यदि आश्रित से कोई काम कराया जाय तो वह सेवक के समान हो जाता है। उससे आश्रय प्रदान करने का महत्व नष्ट हो जाता है—चौधरी वंश में ऐसा नियम कभी नहीं है।

अस्तु सम्पूर्ण दायित्व रासमणि के ऊपर ही है अनेक प्रकार के उपायों द्वारा परिवार के सम्पूर्ण अभावों को छिपाते हुए उन्हें दिन रात काम करना पड़ता है। इस तरह कार्य रूपी दैत्य के साथ दिन-रात संग्राम करने, खींचा तानी में पड़ने, तथा मोल-भाव करते हुए चलने के कारण मनुष्य को बहुत बड़ा बन जाना पड़ता है। उसकी कमनीयता समाप्त हो जाती है। जिन लोगों के लिये वह पल-पल पर परिश्रम करता हुआ मरता है वे ही लोग उसे सहन नहीं कर पाते। रासमणि केवल रसोई घर में रसोई पकाने का ही कार्य करती है, ऐसी बात नहीं है, रसोई के लिये अन्न जुटाने का भार भी उन्हीं के ऊपर है। इतने पर भी अन्न खाकर सोते रहने वाले लोग प्रशंसा के स्थान पर अन्नदाता की निन्दा ही करते हैं।

घर के काम के अतिरिक्त जमीदारी का यह थोड़ा बहुत हिसाब है, उसे देखना तथा लगान वसूल करना आदि कार्य भी रासमणि को ही करने पड़ते हैं। वसूली के सम्बन्ध में पहले उतनी कड़ाई कभी नहीं की जाती थी। भवानीचरण का रुपया अभिमन्यु

से ठीक उल्टा है वह बाहर निकलना तो जानता है, प्रवेश करना नहीं। वे किसी भी दिन रुपये के लिये किसी से तकाजा करने में पूर्ण असमर्थ हैं। परन्तु रासमणि अपने पावने के सम्बन्ध में किसी के साथ एक पैसे की रियायत भी नहीं करती। इसलिये प्रजाजन रासमणि की निन्दा करते हैं। गुमास्ते उनकी सतर्कता से घबराकर उन्हें नीच वंश की स्त्री बताते हुए गालियाँ देने में भी नहीं चूकते। इतना ही नहीं उनके पति भी उनकी कृपणता तथा कर्कशता को अपने प्रसिद्ध परिवार के लिये परम हानिकर बताते हुए कभी-कभी मीठे स्वर में उनकी भर्त्सना करते रहते हैं परन्तु इन सब निन्दाओं की उपेक्षा करती हुई रासमणि अपने नियमानुसार कार्य करती चली जाती हैं, वे अपने माथे पर सारा दोष ले लेती हैं। 'वे दरिद्र घर की लड़की हैं, और उन्हें बड़े आदमियों के चाल-चलन से कोई सम्बन्ध नहीं है।' इस बात को बारम्बार स्वीकार करके घर के तथा बाहर के सभी लोगों की अप्रियता को आँचल के छोर में बाँध कर वे आँधी की भाँति अपने काम में जुटी रहती हैं; उन्हें बाधा पहुँचाने का साहस किसी को नहीं होता।

पति से किसी कार्य में सहायता लेने की बात तो दूर रही वे मन ही मन इसलिये भयभीत रहती थीं कि कहीं भवानीचरण स्वयं ही करने का भार अपने ऊपर न उठा ले। 'आपको कुछ भी सोचने की आवश्यकता नहीं है, उन कार्यों में आपको नहीं पड़ना चाहिये' इस प्रकार के वाक्य कह कर पति को सभी विषयों में उद्योगहीन बनाकर रखना ही उनका प्रधान मन्तव्य रहता था। पति भी अपने बाल्यकाल से इस बात के अभ्यस्त थे। अस्तु स्त्री को उनसे कोई विशेष शिकायत न होती। बड़ी उम्र तक रासमणि के कोई संतान नहीं हुई थी। परन्तु अपने निकम्मे तथा परमुखापेक्षी पति के प्रति उनका हृदय पत्नी-प्रेम तथा मातृप्रेम दोनों से ही परिपूर्ण था। बड़े

होने पर भी भवानीचरण को वे बालक के ही रूप मे देखती थीं। अस्तु, सास की मृत्यु के उपरान्त घर के स्वामी तथा गृहिणी कार्य उन्हें अकेले ही सम्हालने पड़ते थे। गुरुजी के लड़के बगलाचरण तथा अन्य विपक्षियों से अपने पति को बचाने के लिये वे इतनी कड़ाई का बर्ताव रखती थीं कि उनके पति के इष्ट मित्र उनसे बहुत भयभीत बने रहते थे। वे अपनी प्रखरता को छिपाये रहें, स्पष्टता की धार को कुछ कोमल बनायें तथा पुरुषों के साथ व्यवहार करने में संकोच की रक्षा करें, यह सब स्त्रियोचित गुण उन्हें प्राप्त नहीं हुए थे।

भवानीचरण अब तक उनकी सभी बातों को मान कर चलते आये थे। परन्तु कालीपद के सम्बन्ध में रासमणि की बात मान कर चलने में उन्हें कठिनाई अनुभव होने लगी।

इसका कारण यह था—रासमणि भवानीचरण को जिस दृष्टि से देखती थीं, उस दृष्टि से अपने पुत्र को नहीं देखती थीं। पति के बारे में तो वे यह सोचा करती थीं; कि उस बेचारे ने बड़े आदमी के घर जन्म लिया है; अस्तु उसके लिये कोई दूसरा उपाय नहीं हो सकता। किसी भी बात में उनका दोष नहीं माना जा सकता। यही कारण था कि वे यह आशा नहीं रखती थीं कि उनके पति किसी प्रकार का भी कष्ट सहन कर सकेंगे। वे अपनी पूरी शक्ति के साथ पति की सम्पूर्ण आवश्यकताओं की पूर्ति किया करती थीं। बाहरी लोगों के साथ उनका व्यवहार अत्यन्त कड़ा था, परन्तु भवानीचरण के खाने-पीने, पहनने-ओढ़ने आदि के पुराने नियमों में कोई परिवर्तन नहीं आया था। यदि किसी दिन अत्यन्त अभाव के कारण पति के लिये कोई आवश्यक वस्तु नहीं आ पाती तो वे अपने पति को यह बात कभी नहीं जताती थीं कि अभाव के कारण हा उक्त वस्तु प्राप्त नहीं हो सकती है। उस समय वे बात को छिपा

कर लगभग इस प्रकार कहतीं—'उस अभागे कुत्ते ने मुंह डाल कर अमुक वस्तु नष्ट कर दी है।' इस प्रकार की बात कह कर वे अपनी कल्पित असावधानी को धिक्कारती भी थीं। कभी कहतीं—'अमुक निकम्मे नौकर की असावधानी से नया खरीदा हुआ वस्त्र खो गया है।' फिर वे नौकर के ऊपर लांछन लगाती हुई उसकी बुद्धिहीनता भी प्रगट कर देती थीं। ऐसी बात सुनकर भी भवानीचरण नौकर को अपनी पत्नी के कोप से बचाने के लिये मन ही मन घबरा उठते थे। कभी-कभी ऐसी घटना भी हो जाती थी कि जिस कपड़े को रासिमणि ने कभी खरीदा भी नहीं था, और भवानीचरण ने कभी देखा भी नहीं था, उसे खो देने के सम्बन्ध में रासमणि नट-बिहारी को दोष देतीं और भवानीचरण उदास चेहरे से यह स्वीकार कर लेते थे कि उस कपड़े को नटबिहारी ने उन्हें सम्हाल कर दे दिया। इतना ही नहीं उन्होंने कुछ दिनों उसे पहना भी था परन्तु वह किस प्रकार खो गया है यह ध्यान कभी नहीं रहा है। ऐसे अवसर पर रासमणि कहतीं—'आपने उस कपड़े को अवश्य ही बैठक खाने में छोड़ दिया होगा, वहाँ सब लोग बेधड़क आते रहते हैं, उन्हीं में से कोई चुरा ले गया होगा।'

इस प्रकार की व्यवस्था रासमणि ने अपने पति के लिये की थी। परन्तु वे अपने पुत्र को उनकी श्रेणी में नहीं मानती थीं। वह बालक तो उनके गर्भ से उत्पन्न हुआ है, अस्तु उसे बाबू बनने की आवश्यकता नहीं है। उसे तो कर्मठ और बलवान मनुष्य बनना होगा—अनायास कष्ट सहन करना पड़ेगा तथा महनत से भी जी न चुराना होगा। उसे यह कहना शोभा नहीं देगा कि मुझे अमुक वस्तु मिलनी चाहिये। उसके अभाव में मेरा कार्य नहीं चल सकेगा तथा अपमानित होना पड़ेगा।

कालीपद के खानदान में रासमणि ने मोटे आचरण की व्य-

वस्था की थी—मोटा वस्त्र, मोटा खानपान। उसके जलपान में गुड़ चने रहते। जाड़े से बचाने के लिये कान ढकने वाली टोपी तयार कर दी गई थी। मास्टर साहब को बुलाकर उन्होंने यह भली भाँति समझा दिया था कि लड़के की पढ़ाई लिखाई में किसी प्रकार की ढील नहीं रहनी चाहिये। उसके ऊपर कड़ा शासन रखना उचित है।

बस इसी सम्बन्ध में दिक्कतें होने लगीं। भवानीचरण कभी कभी विद्रोह के लक्षण प्रगट करते, परन्तु रासमणि मानो उस ओर देखती भी नहीं थीं। भवानीचरण को अपनी हार स्वीकार कर लेनी पड़ती, परन्तु उनके हृदय का विरोधी भाव दूर नहीं होने पाता था। चौधरी वंश के बालक को गुड़ चना खाना पड़ता है, तथा कनटोप पहनना पड़ता है ऐसा दृश्य किस प्रकार देखा जा सकेगा ?

दुर्गापूजा के समय भवानीचरण को पुराने समय की याद आ जाती थी। उन दिनों नये नये वस्त्र पहन कर ऐसा उत्साह उमड़ उठता था। परन्तु अब यह स्थिति है कि पूजा के अवसर पर रासमणि लड़के को पहनने के लिये जैसा पहनावा देती हैं, वैसे पहनावे पर उस समय घर के नौकर-चाकर भी आपत्ति करते थे। ऐसे अवसर पर रासमणि पति को समझाते हुए कहतीं—'कालीपद को जो कुछ दिया जाता है उसी में वह प्रसन्न रहता है। आपके वंश के पुराने चाल-चलन के सम्बन्ध में उसे कुछ नहीं मालूम, अस्तु। आप व्यर्थ ही चिन्तित रहते हैं।'

परन्तु भवानीचरण यह बात किसी भी प्रकार नहीं भूल पाते कि कालीपद को अपने वंश-गौरव का ज्ञान नहीं है। इसलिये उसे धोखा दिया जा रहा है। जब कभी वह बालक साधारण सा उपहार पाकर प्रसन्नता से खिलने लगता था, तो उनके हृदय को और

अधिक चोट लगती थी। वह दृश्य उनसे देखा नहीं जाता था। तब वे मुंह फेरकर उस स्थान से हट जाया करते थे।

भवानीचरण पर मुकद्दमा चलाने के बाद से गुरुजी के घर बहुत धन हो गया है। परन्तु उससे भी सन्तुष्ट न होकर गुरुजी के पुत्र पूजा से कुछ समय पूर्व कलकत्ते से भाँति-भाँति की वस्तुऐं मंगा कर उनका व्यापार किया करते हैं। वंशी, छड़ी, छाते, अदृश्य स्याही, चित्र, लिखने के सचित्र कागज, नीलाम में खरीदे हुए साटन तथा रेशम के कपड़े, पाड़दार छपी हुई साड़ियाँ आदि वस्तुऐं लाकर वे गांव की जनता का मन चंचल बना देते हैं। कलकत्ते के बाबुओं के यहाँ इन वस्तुओं की बिना शिष्टता की रक्षा नहीं हो पाती यह सुनकर गाँव के लोग भी इन वस्तुओं को खरीदने में अपनी शक्ति से अधिक धन खर्च कर डालते और अपना देहातीपन दूर करते थे।

गुरुजी के पुत्र बगलाचरण इस वर्ष एक अत्यन्त आश्चर्यजनक मैम की मूर्ति लाये थे। उसके शरीर में जब एक जगह लगी हुई चाबी ऐंट दी जाती तो वह कुर्सी को छोड़ कर खड़ी हो जाती और शीघ्रतापूर्वक अपने शरीर पर हवा करने लगती थी। इस गर्मी से तड़पने वाली तथा हवा करने वाली इस मैम मूर्ति को प्राप्त करने के लिये कालीपद के मन में बड़ी इच्छा हुई। कालीपद अपनी माँ के स्वभाव से भलीभाँति परिचित था। अस्तु उसने माँ से कुछ न कह कर भवानीचरण के सम्मुख अपना प्रार्थना-पत्र पेश कर दिया। भवानीचरण ने उसी क्षण आश्वासन तो दिया, परन्तु दाम सुनते ही उनका चेहरा सूख गया।

रुपया वसूल करने का अधिकार रासमणि को है। व्यय भी उसी के हाथ से होता है। अस्तु, भवानीचरण भिक्षुक की भांति अपनी अन्नपूर्णा के द्वार पर जा उपस्थित हुए। इधर-उधर की बातें

शीघ्रतापूर्वक कहने के उपरांत उन्होंने अपने मन की इच्छा पत्नी के सम्मुख प्रकट कर दी ।

रासमणि ने उसे सुनकर अत्यन्त संक्षेप में कहा—'क्या पागल हो गये हैं ?'

भवानीचरण उत्तर सुनकर कुछ देर तक चुपचाप सोचते रहे । तदुपरांत एकाएक बोले—'देखो तुम मुझे भात के साथ प्रतिदिन जो घी दिया करती हो उसकी कोई आवश्यकता नहीं है ।' रासमणि बोली—'आवश्यकता क्यों नहीं ?' भवानीचरण ने कहा—'वैद्यजी का कहना है कि घी से पित्त की वृद्धि होती है ।'

यह सुनकर रासमणि ने जोर से अपना मस्तक हिलाते हुए कहा—'आपका वैद्य क्या जाने ।'

भवानीचरण बोले—'मैं कहता हूँ कि संध्या के भोजन में पूड़ी समाप्त करके मेरे लिये भात की व्यवस्था कर दो क्यों कि पूड़ियों से पेट भारी हो जाता है ।'

रासमणि बोली—'पेट भारी होने से कोई नुकसान मैंने नहीं देखा । आप तो बचपन से ही पूड़ी खा-खाकर पले हैं ।'

भवानीचरण को सब प्रकार का परित्याग करना स्वीकार है, परन्तु रासमणि की ओर से कड़ाई बनी रही । घी का दाम निरंतर बढ़ता चला जा रहा है, फिर भी पूड़ियों की संख्या समान है । दोपहर के भोजन में जब मट्ठा है ही फिर दही न होने पर ही काम चल सकता है । परन्तु इस मकान के बाबू लोग दही और मट्ठा सदा से अलग खाते हुए चले आते हैं । भवानीचरण के भोजन में दही की कमी हो यह रासमणि को स्वीकार नहीं था । अस्तु भवानीचरण द्वारा दही पायस घी-पूड़ी आदि के त्याग किये जाने रूपी छिद्रपथ से भी मैम मूर्ति का प्रवेश किसी प्रकार सम्भव दिखाई नहीं दिया ।

एक दिन भवानीचरण अकारण ही अपये गुरुजी के लड़के के घर जा पहुँचे। इधर-इधर की बातें करने के उपरांत उन्होंने उस मैम–मूर्त्ति के बारे में पूछताछ की। उनके घर की वर्तमान आर्थिक दुर्गति बगलाचरण से छिपी हुई नहीं है, यह बात भवानी चरण भलीभाँति जानते है। फिर भी वे आज रुपयों के अभाव में अपने बालक के लिये एक मामूली सा खिलौना नहीं खरीद सकते इसे प्रकट करने में उनका मस्तक लज्जा से मानो कटने लगा। तब उन्होंने अपने संकोच को किसी प्रकार दबा कर चादर के भीतर कपड़ों में लपेटा हुआ एक जरी का पुराना कोट निकाला। फिर भर्राई हुई आवाज में बगलाचरण से इस प्रकार कहा—'आजकल हाथ में नकद रुपया अधिक नहीं है अस्तु मैंने यह विचार किया है कि मैं इस जरी के कोट को तुम्हारे पास गिरवी रख कर काली-पद के लिये इस खिलौने को ले जाऊँ।'

जरी के कोट की अपेक्षा कोई कम मूल्य की वस्तु होती तो उसे स्वीकार करने में बगलाचरण को किसी प्रकार हिचक नहीं हो सकती थी–परन्तु वह जानता था कि इस कोट को पचा लेने की सामर्थ उसमें नहीं है, गाँव वाले तो निन्दा करेंगे ही, साथ ही रासमणि के मुख से जो बातें निकलेंगी वे कभी सरस न होंगी। अस्तु भवानीचरण को वह जरी का कोट अपनी चादर में फिर छिपाकर निराश वापस लौट आना पड़ा।

कालीपद अपने पिता से रोज पूछता था—'बाबू जी! मेरी मैम का क्या हुआ?' भुवानीचरन प्रतिदिन हँसते हुए उत्तर देते—'सप्तमी पूजा का दिन तो आने दो। अभी जल्दी क्या है।'

परन्तु प्रतिदिन बनावटी हंसी को चेहरे पर लाना भी कठिन हो उठा।

आज चतुर्थी है। भवानीचरण अचानक ही किसी कार्य के बहाने घर के भीतर जा पहुँचे। फिर बातचीत के प्रसंग में रासमणि से बोले—'देखो मैं कई दिनों से अनुभव कर रहा हूँ कि कालीपद का शरीर दिनों-दिन क्षीण होता चला जा रहा है।'

यह सुनकर रासमणि ने कहा—'झूँठ है मैं तो उसमें रोग का कोई चिह्न नहीं पाती फिर उसका स्वास्थ गिरेगा किसलिये ?'

भवानीचरण बोले—'देखती नहीं वह आजकल चुपचाप बैठा रहता है। मानो किसी चिन्ता में डूबा हुआ हो।' रासमणि ने उत्तर दिया—'यदि वह क्षण भर भी बैठा रहता तो मेरी जान बच जाती, चिन्ता से तो वह कोसौं दूर है। कब कैसी दुष्टता करनी चाहिये इसी बारे में दिन रात सोचता रहता है।'

किले की चहारदीवारी के किसी भी भाग में दुर्बलता के चिन्ह दिखाई नहीं दिये, पत्थर पर गोले का चिन्ह नहीं पड़ा। भवानीचरण लम्बी स्वासें लेते हुए मस्तक पर हाथ फेरते हुए बाहर निकल आये और चबूतरे पर अकेले बैठे हुए जोर जोर से तम्बाकू पीने लगे।

पंचमी के दिन इनकी भोजन की थाली में पायस ज्यों का त्यों पड़ा दिखाई दिया। सन्ध्या के समय केवल एक मिठाई खाकर ही पानी पिया गया पूड़ी का स्पर्श भी नहीं हुआ। पूछने पर उत्तर दिया—'मुझे भूख नहीं है।'

इस घटना से किले की दीवार में एक बहुत बड़ा छेद दिखाई दैने लगा। शष्ठी के दिन रासमणि ने कालीपद को एकान्त में बुला कर उपदेश किया—'बेटा तुम इतने बड़े हो गये, फिर भी तुम्हारी जिद नहीं छूटी। जिस वस्तु को पाने का कोई उपाय न हो उसके लिये इच्छा करना आधी चोरी समझी जाती है, क्या तुम्हें यह बात मालूम नहीं है।'

कालीपद ने रूठे स्वर में उत्तर दिया—'मैं क्या जानूँ। बाबू जी ने यह कहा था कि तेरे लिये खिलौना ला देंगे।'

तब रासमणि कालीपद को बाबू जी के कहने का अर्थ समझाने लगी। पिता ने यह बात कितने दुख तथा कितने स्नेह से कही है, उस मैम-मूर्ति को खरीदने में उनका कितना व्यय होगा। उसे समझाने का प्रयत्न उन्होंने किया। आज से पूर्व रासमणि ने बालक को कभी उपदेश नहीं किया। वे जिस बात को चाहतीं उस बात को दृढ़ता पूर्वक कर डालती थीं। किसी भी नम्रता का प्रदर्शन करने की आवश्यकता उन्हें नहीं होती थी। अस्तु आज से माँ के मुख से ऐसी मदु बातें सुनकर कालीपद को अत्यन्त आश्चर्य हुआ। माता की आन्तरिक वेदना का अनुभव उसे कुछ न कुछ अवश्य हुआ। परन्तु मैम की ओर से एकाएक मन हटाना उसके लिये अत्यन्त कठिन था। अस्तु वह गम्भीर होकर एक पतली लकड़ी द्वारा पृथ्वी पर रेखायें खींचने लगा।

यह देखकर रासमणि अत्यन्त कठोर बन कर गम्भीर स्वर में बोली—'तुम चाहे जितना क्रोध करो, चाहे जितने रोओ पीटो, परन्तु जो वस्तु मिलने वाली नहीं है उसे तुम किसी प्रकार नहीं पा सकते।' इतना कह कर वे अपने समय को और अधिक व्यर्थ नष्ट न करके शीघ्रता पूर्वक कदम बढ़ाती हुई घरेलू काम धन्धों में जा जुटीं।

कालीपद बाहर निकल गया। भवानीचरण उस समय अकेले बैठे तम्बाकू पी रहे थे। कालीपद को आते देखकर वे शीघ्रता पूर्वक इस प्रकार उठ खड़े हुए मानो उन्हें किसी अत्यावश्यक कार्य से कहीं जाना हो। परन्तु तभी कालीपद दौड़ता हुआ उनके पास जा पहुँचा और कहने लगा—'बाबू जी वह मैम………।'

आज भवानीचरण के चेहरे पर हँसी न आ सकी। वे

कालीपद का कंठ पकड़ कर प्रेम पूर्ण स्वर में बोले—'बेटा अभी ठहरो मुझे आवश्यक काम पर जाना है, उसे पूरा करने के उपरांत तुम से बातचीत होगी।' इतना कह कर वे घर से बाहर निकल गये।

कालीपद यह अच्छी तरह समझ गया कि उनके पिता को किसी काम पर जाना नहीं है। उनके चलने के ढंग से यह बात अच्छी तरह से समझ में आती थी। तब उसने अपनी माँ के पास जाकर कहा—'माँ मुझे उस मैम की आवश्यकता नहीं है मैं उसे नहीं लेना चाहता।'

रासमणि उस समय सरौते से सुपारी काट रही थीं। काली-पद की बात सुनकर उनका चेहरा चमक उठा। तभी माँ बेटे में एक परामर्श हुआ। जिसे कोई दूसरा नहीं जान सका। उसी समय रासमणि उठ कर बगलाचरण के घर चली गई।

आज भवानीचरण को घर लौटने में बहुत देर लगी। स्नान के उपरांत जिस समय वे भोजन करने के लिये बैठे तो ऐसा प्रतीत हुआ कि दही-पायस की सद्गति आज भी नहीं होगी। यहाँ तक मछली को भी ज्यों की त्यों पड़ा रह जाना होगा, उसे बिल्ली भले ही खाये। तभी कागज के बक्स में कोई वस्तु लिये रासमणि आ उपस्थित हुई। उनकी इच्छा थी कि भोजन के उपरान्त जब भवानी-चरण विश्राम के लिये जाँय, तभी वे अपने रहस्य का उद्घाटन करें। परन्तु दही-पायस और मछली का अनादर करने के हेतु उसे उसी क्षण उस रहस्य का उद्घाटन करना पड़ा। बक्स के भीतर से मैम की मूर्ति निकल पड़ी तथा हवा करती हुई ग्रीष्म की ज्वाला को शान्त करने लगी। अस्तु आज बिल्ली को निराश होकर लौट जाना पड़ा। भवानीचरण पत्नी को सम्बोधित करते हुए बोले—'आज का भोजन बहुत अच्छा बना है। बहुत दिनों से ऐसा खाना

प्राप्त नहीं हुआ था। दही भी इतना अच्छा जमा है कि कहा नहीं जा सकता।'

सप्तमी के दिन कालीपद ने अपने अभिलाषित धन को प्राप्त किया। वह दिन भर उस मैम का हवा करना देखता रहा। तथा अपने साथियों की ईर्ष्या को जाग्रत करता रहा। यदि किसी अन्य दिन की बात होती तो वह मैम का निरन्तर हवा करना देखकर अवश्य रूँठ जाता—परन्तु अष्टमी के दिन इस प्रतिमा को विसर्जित करना पड़ेगा, यह जान कर उसका अनुराग अटल बना रहेगा। रासमणि बगलाचरण को दो रुपये नक़द देकर वह पुतली एक दिन के लिये भाड़े पर ले आई थी। अष्टमी के दिन कालीपद स्वयं ही उस पुतली को अपने हाथ से बक्स में रख कर बगलाचरण को लौटा आया। एक दिन के मिलन की सुखद स्मृति उसके हृदय में बहुत दिनों तक बनी रही। कल्पना लोक में वह निरन्तर उस मैम को हवा करते हुए देखता रहता था।

अब कालीपद अपनी माँ की मन्त्रणा से काम करने लगा। प्रति वर्ष भवानीचरण सुविधा पूर्वक कालीपद को पूजा का उपहार दे सकने में समर्थ थे, इससे उन्हें स्वयं बड़ा आश्चर्य हो उठा।

इस संसार में मूल्य दिये बिना कोई वस्तु नहीं मिलती तथा मूल्य को कष्ट सह कर चुकाया जा सकता है। यह बात कालीपद अपनी माता के सहयोग से जितना अधिक समझने लगा उतना ही उसे ऐसा प्रतीत हो उठा मानो अब वह बड़ा होता चला जा रहा है। वह अब सभी कार्यों में अपनी माता की सहायता करता। वह भली भाँति समझ उठा कि गृहस्थी का भार सँभालना अच्छा है, बढ़ना अच्छा नहीं।

कालीपद जी जान से उत्तरदायित्व गृहण करने में प्रस्तुत हो गया। छात्रवृत्ति-परीक्षा में उत्तीर्ण होकर उसने छात्रवृत्ति प्राप्त

की । भवानीचरण ने विचार किया अब उसे अधिक पढ़ने की आवश्यकता नहीं है । यदि वह जायदाद की देखभाल करने में लग जाय तो ठीक रहेगा ।

एक दिन कालीपद ने अपनी माता के पास पहुँचकर कहा—'माँ जब तक कलकत्ता जाकर नहीं पढ़ूंगा तब तक योग्यता प्राप्त न होगी ।'

माँ ने उत्तर दिया—'ठीक है कलकत्ता तो जाना ही पड़ेगा ।' कालीपद बोला—'मेरे लिये कोई अतिरिक्त खर्च करने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी । मुझे जो छात्रवृत्ति प्राप्त होगी उसी से मैं पढ़ाई का खर्च चला लूंगा, साथ ही कुछ काम-काज का भी प्रबन्ध कर लूँगा ।'

कालीपद को कलकत्ता भेजने के सम्बन्ध में भवानीचरण को तैयार करने के लिये बहुत प्रयत्न करना पड़ा । जायदाद इतनी अधिक नहीं है जिसकी देखभाल की आवश्यकता पड़े । यह कहने से भवानीचरण के हृदय को ठेस पहुँचती थी, अस्तु रासमणि ने इस बात को न उठा कर यह कहा—'कालीपद को योग्यता प्राप्त करनी आवश्यक है ।'

परन्तु शनियाड़ी के चौधरी लोग योग्यता प्राप्त करने के लिये गाँव से बाहर कभी नहीं गये थे । वे घर बैठे योग्य बन जाते थे । विदेश से उन्हें यमलोक की भाँति भय लगता था । कालीपद वैसे लड़के को अकेले कलकत्ता भेजने का प्रस्ताव किसी के मस्तिष्क में आ सकता है इस बात की उन्होंने कल्पना भी नहीं की थी । अतः गाँव के सबसे बुद्धिमान बगलाचरण ने रासमणि का समर्थन कर दिया ।

बगलाचरण ने कहा—'एक दिन कालीपद पढ़-लिखकर वकील बन जायगा तथा वसीयतनामे की चोरी का बदला लेगा । उसके भाग्य में यही बात लिखी हुई है अस्तु उसे कलकत्ता जाने से कोई

नहीं रोक सकता ।' बगलाचरण की बात सुनकर भवानीचरण को सांत्वना मिली । वे पुराने वस्त्रों से कानूनी कागज-पत्र निकाल कर बार बार वसीयतनामे की चोरी के सम्बन्ध में आलोचना करने लगे। कालीपद आज तक माता का मन्त्री बन कर कामकाज करता आया था, परन्तु पिता के साथ परामर्श कराते समय उसे अपना बल दिखाई नहीं दिया । परिवार में पुराने समय जो अन्याय हुआ था उसके सम्बन्ध में उसके मन में कोई विशेष उत्तेजना नहीं थी । परन्तु फिर भी वह पिता की बात को सुनता रहा तथा उनकी हाँ में हाँ मिलाता रहा । जिस प्रकार सीता का उद्धार करने के लिये रामचन्द्र जी ने लङ्का की यात्रा की थी उसी प्रकार कालीपद की कलकत्ता यात्रा को कालीचरण ने बड़ा महत्व दिया । वह यात्रा केवल परीक्षा पास करने का आयोजन ही नहीं था अपितु घर की लक्ष्मी को लौटा लाने का साधन भी था ।

जिस दिन कालीपद कलकत्ता जाने लगा, उसके एक दिन पूर्व रासमणि ने उसके गले में एक रक्षाकवच बाँधा तथा पचास रुपये का नोट हाथ में देते हुए यह कहा—'बेटा, इस नोट को सावधानी से अपने पास रखना । विपत्ति के अवसर पर यह तुम्हारा काम देगा ।' बड़े कष्ट पूर्वक बचाये हुए इस नोट को ही सच्चा रक्षा-कवच जान कर कालीपद ने प्रसन्नता पूर्वक स्वीकार किया । उसने मन ही मन यह निश्चय किया कि वह इस नोट को माता के आशीर्वाद की भाँति सदैव सुरक्षित रक्खेगा और किसी भी तरह खर्च नहीं होने देगा ।

३

अब भवानीचरण के मुँह से वसीयतनामे की चोरी के विषय में कोई बात दिखाई नहीं पड़ती । अब उनकी एकमात्र आलोचना का विषय केवल कालीपद ही बन गया है । इन दिनों उसकी

ही चर्चा करने के लिये वे गाँव में घूमते रहते हैं, उसकी चिट्ठी पाते ही गाँव के लोगों को सुनाने के लिये घर से निकल पड़ते है। उनके वंश में कभी कोई कलकत्ता जाने का सौभाग्य प्राप्त न कर सका था, इसीलिये वे कलकत्ते के वैभव को समझते हुए अत्यन्त उत्तेजित हो उठते थे। हमारा कालीपद कलकत्ते में अध्ययन कर रहा है। कलकत्ते का कोई भी समाचार जानना उससे शेष नहीं है, यहाँ तक कि हुगली के निकट गंगा पर दूसरा पुल और बन रहा है। इस प्रकार की बड़ी बड़ी खबरें उसके लिये मामूली घरेलू बातों के समान हो गई हैं।

एक दिन वे अपने चश्मे के शीशे को भलीभाँति साफ करते हुए अपने एक पड़ौसी को लड़के का पत्र पढ़कर सुनाने लगे—'सुनते हो भाई? गंगा पर एक पुल और बन रहा है। इस युग में कैसी आश्चर्यजनक बातें हो जायेंगी। अब तो कुत्ते और गीदड़ भी धूल से भरे हुए पैरों से गंगा जी को आसानी से पार कर जायेंगे, कलि-युग में यह भी सम्भव हो चला।'

इस प्रकार गंगा जी का महात्म्य घट जाना एक सोचनीय विषय है। इसमें सन्देह नहीं; परन्तु इतनी बड़ी खबर कालीपद ने ही लिखकर भेजी है तथा गाँव के अनपढ़ गँवार लोगों को यह खबर उनकी ही कृपा से मालुम हुई, वे इस आनन्द में डूब कर वर्तमान युग के जीवों की दुर्दशा को अनायास ही भूल गये। उन्हें जो कोई भी मिला वे सिर हिलाकर कहते—'सुनते हो भाई, अब गंगा जी अधिक दिन रहने की नहीं।' मन ही मन वे इसी आशा में रहने लगे कि जब गंगा जी जाने लगेगीं, तब सर्व प्रथम यह समाचार कालीपद के पत्र द्वारा ही मालूम होगा।

कालीपद कलकत्ते में बहुत कष्ट से अपनी पढ़ाई कर रहा था। वह जिसके मकान में रहता था उसके लड़के को पढ़ाता था

तथा रात को हिसाब भी लिखता था । किसी प्रकार दसवीं परीक्षा में पास होकर उसने पुन: छात्रवृत्ति प्राप्त कर ली । भवानीचरण इस आश्चर्यजनक घटना के उपलक्ष में गाँव के सब लोगों को एक बड़ी दावत देने के लिये बेचैन हो उठते । उन्होंने सोचा, नाव तो प्राय: अब किनारे पहुंच ही चुकी है इसी साहस से अभी से दिल खोल कर खूब खर्च किया जा सकता है । परन्तु इस सम्बन्ध में रासमणि से कोई प्रोत्साहन न मिलने के कारण दावत न हो सकी ।

कालीपद अब कालेज के समीप ही एक मैस में रहने लगा । मैस के संचालक ने उसको नीचे की मंजिल का एक कमरा, जो सदैव खाली पड़ा रहता था; उसे रहने के लिये दे दिया । कालीपद इसके बदले में उनके लड़के को पढ़ाता था और दोनों समय भोजन करता था । उसे सील से भरी हुई कोठरी में ही रहना पड़ता था । उसमें सबसे बड़ी सुविधा यह थी कि उसमें कालीपद का कोई दूसरा भागीदार नहीं था । यद्यपि वहां हवा नहीं चलती थी तो भी अध्ययन भलीभाँति होता था । जो भी हो, सुविधा तथा असुविधा का विचार का करने अवस्था कालीपद की नहीं थी ।

जो लोग इस मैस में किराये पर रहते थे, विशेषत: जो दूसरी मंजिल के ऊँचे लोक में रहने वाले थे, स्कूल के साथ कालीपद का किसी प्रकार का संपर्क नहीं था परन्तु सम्पर्क न होते हुए भी संघर्ष से रक्षा नहीं होती । ऊँचाई से आने वाला वज्राघात नीचे के लोगों को कैसी प्राण घातक चोट पहुँचाता है कालीपद को यह समझने में देर नहीं लगी ।

इस मैस के उच्च लोक में जिसको इन्द्र का सिंहासन प्राप्त है, उसका परिचय देना अत्यन्त आवश्यक है उसका नाम शैलेन्द्र है । वह अमीर आदमी का लड़का है । कालेज में पढ़ते समय उसके

लिये मैस में रहना आवश्यक है। फिर भी उसको मैस में रहना ही अच्छा लगता था। उसके घर में अभिभावकों का अनुरोध आया था कि वह अलग मकान किराये पर लेकर रहे तथा उसके साथ घर के लोगों में से कुछ लोग विनास करें। परन्तु शैलेन्द्र ने इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया।

उसने इसका कारण बताते हुए कहा कि घर के लोगों के साथ रहने से उसके लिखने-पढ़ने में बाधा पहुँचेगी। परन्तु वास्तविक कारण यह नहीं था। शैलेन्द्र निर्जनता पसन्द नहीं करता, वह भी लोगों के साथ ही रहना पसन्द करता है। घर के लोगों के साथ रहने में सबसे बड़ी परेशानी यह है कि केवल उनके साथ रहने से ही छुटकारा नहीं मिलता, उनके लिये तरह २ के दायित्व भी उठाने पड़ते हैं। किसी के लिये यह काम करना चाहिये, किसी के लिये यह काम करने से निन्दा की बात होगी। इसी कारण शैलेन्द्र को रहने के लिये मैस ही सबसे सुविधाजनक स्थान प्रतीत हुआ। वहाँ पर रहने वालों की संख्या अधिक है, परन्तु किसी का भार उसके ऊपर नहीं है। वे लोग आते हैं, जाते हैं, हँसते हैं, बातचीत करते है। वे सब नदी के जल के समान हैं, केवल जल की भाँति ही बहते हुए चले जाते हैं।

शैलेन्द्र स्वभाव से ही दयालु था। उसकी रुचि सचमुच ही किसी का दुःख दूर करने में थी। परन्तु उसकी यह रुचि इतनी प्रबल थी कि यदि कोई अपना दुःख दूर करने के लिये उसकी शरण में नहीं आता था तो वह उस पर बहुत क्रोधित हो जाता था तथा उसको बिना कुछ दिये चैन नहीं लेता था। जब उसकी दया निर्दयी हो जाती थी, तब वह बहुत ही भीषण रूप धारण कर लेती थी।

मैस में रहने वालों को थियेटर आदि दिखाता, रुपया उधार देता तथा मांस-मछली आदि अनेक प्रकार के खाने खिलाता था।

जब कोई नव-विवाहित युवक पूजा की छुट्टी में घर जाते समय कलकत्ते के खर्च से खाली हाथ हो जाता था, तब उसे वधू के लिये अच्छे साबुन, ऐसेंस, जेकेट आदि वस्तुएँ खरीद देने में कोई विशेष असुविधा नहीं होती थी। वह पूर्णतः शैलेन्द्र पर ही निर्भर करके कहता था—'भाई तुम सब तो जानते ही हो, अपनी पसन्द से चीजें खरीद दो।' इस प्रकार वह शैलेन्द्र को साथ लेकर चीजें खरीदने के लिये दूकान पर जाता तथा सस्ती चीजें पसन्द करने लगता। शैलेन्द्र यह देख २ कर भर्त्सन देकर कहता—'छिः छिः! हमारी पसन्द कैसी खराब है।' शैलेन्द्र यह कह कर अच्छी-अच्छी चीजें उठा लेता था। तब दूकानदार कहता—'हाँ, इनको इस चीज का भलीभाँति ज्ञान है कि कौन-सी चीज अच्छी है।' जब खरीदने वाला इन चीजों के दाम सुनकर मुँह उदास कर लेता, तब शैलेन्द्र उन चीजों के दाम चुकता करने में जरा भी नहीं हिचकिचाता था। वह बार-बार आपत्ति करने पर भी कोई ध्यान नहीं देता था।

शैलेन्द्र इस प्रकार साथ रहने वाले तथा आस-पास के लोगों के लिये आश्रयदाता बन गया था। यदि कोई उसका आश्रय स्वीकार नहीं करता था, तो उसे यह असह्य प्रतीत होता था।

कालीपद बेचारा नीचे की सीलभरी कोठरी में मैली चटाई पर बैठकर फटे पुराने कपड़े पहने पुस्तक पर झुक कर पढ़ता रहता था। जिस प्रकार भी हो उसे स्कॉलरशिप पाने की ही धुन उसे लगी रहती थी।

कलकत्ता जाने से पूर्व उसकी माँ ने उसे अपने माथे की शपथ खिलाकर कहा था—'बेटा, बड़े आदमियों के लड़के के साथ अधिक मेल-जोल बढ़ाकर आमोद-प्रमोद में मत फँस जाना। काली-पद केवल माता के आदेश से ही नहीं बल्कि वह जिस अवस्था में था उसमें रहते हुए बड़े आदमियों के लड़कों के साथ मेल-जोल

करना उसके लिये असम्भव था। वह कभी भी शैलेन्द्र के पास नहीं गया। हालाँकि वह जानता था कि शैलेन्द्र को प्रसन्न रखने से उसकी अनेक कठिन समस्यायें आसान हो सकती हैं, परन्तु कालीपद को संकट के समय भी उसकी कृपा पाने का लोभ नहीं होता था। वह अनेक चीज़ों के अभाव में, दरिद्रता में अपनी अँधेरी कोठरी में ही चुपचाप पड़ा रहता था।

शैलेन्द्र से गरीब होते हुए भी दूर रहने का अहंकार नहीं सहा गया। इसके अतिरिक्त खाने-पीने तथा पहिनने-ओढ़ने में कालीपद की दरिद्रता इतनी स्पष्ट थी कि वह उसकी आँखों में बहुत ही खटकती रहती थी। शैलेन्द्र की दृष्टि में सीढ़ियों से ऊपर चढ़ते समय जब कालीपद के अत्यन्त गन्दे फटे पुराने कपड़े, बिस्तर आदि पड़ जाते थे तब वह इसे एक बड़ा अपराध समझता था। इसके अतिरिक्त कालीपद के गले में एक कवच लटका रहता था। वह प्रातःकाल तथा सन्ध्या को पूजा करता था। उसकी यह अद्भुत ग्रामीणता शैलेन्द्र के साथियों के लिये एक हँसी का विषय थी। कालीपद जैसे एकांतवासी मनुष्य का रहस्योदघाटन करने के लिये शैलेन्द्र के दो चार साथियों ने कई बार उसकी कोठरी में आना-जाना किया। परन्तु वे इस मुँह चोर मनुष्य के मुख से कोई भी बात न निकलवा सके। कालीपद के कमरे में अधिक समय तक बैठा रहना सुखकर एवं स्वस्थ्यकर न रहने के कारण वहाँ से उन्हें तुरन्त हट जाना पड़ता था।

एक दिन मस में भोज का आयोजन किया गया तथा मांस पकाया गया। कालीपद को भी उसके लिये निमन्त्रित किया गया। परन्तु कालीपद ने उस निमन्त्रण को स्वीकार नहीं किया था। शैलेन्द्र इस बात से अत्यन्त क्रोधित हुआ।

इधर कुछ दिनों से ऊपर की मंजिल में गाने-बजाने की

ऐसी धूम-धाम होने लगी जिससे कालीपद के अध्ययन बाधा में पड़ने लगी। कालीपद यह देखकर दिन को पुस्तक लेकर गोलदीघी चला जाता था तथा वहाँ पेड़ के नीचे बैठकर पढ़ता रहता था। रात को खूब भोर में ही जागकर वह दिया जलाकर पढ़ने बैठ लाया करता था।

कालीपद को कलकत्ते में रहने तथा खाने-पीने के कष्ट से सिर दर्द की बीमारी पैदा हो गई। कभी २ यह रोग इतना बढ़ जाता था कि तीन-चार दिन तक लगातार वह बिस्तर पर ही पड़ा रहता। वह जानता था यह समाचार मिलने पर उनके पिता उसे कलकत्ते में कभी भी नहीं रहने देंगे, तथा शायद वे घबड़ाकर कलकत्ते ही आ जांय। परन्तु भवानीचरण जानते थे कि कलकत्ते में कालीपद ऐसे सुख में है, जिसकी कल्पना ही गाँव के लोग नहीं कर सकते। गाँव-देहात में पेड़-पौधे-झाँड़-झंकड़ जिस प्रकार स्वयं ही पैदा होते हैं, उसी प्रकार कलकत्ते की जलवायु में मानो सब प्रकार के सुखों के उपकरण स्वयं ही पैदा होते हैं, तथा सभी लोग उसके फल प्राप्त कर सकते हैं, उनकी ऐसी ही धारणा थी। कालीपद ने उनके भ्रम को कभी दूर नहीं किया। बीमारी की दशा में भी उसने अपने पिता को पत्र लिखना नहीं छोड़ा। परन्तु ऐसी बीमारी की दशा में जब शैलेन्द्र अपने साथियों के साथ हल्ला-गुल्ला मचाता हुआ अनेक प्रकार के उपद्रव करता रहता था, तब कालीपद के कष्ट की सीमा नहीं रहती। वह केवल इधर-उधर करवट बदलता रहता था तथा अपने सूने कमरे में पड़ा हुआ मां को पुकारता तथा पिता को याद किया करता था। वह इस प्रकार दरिद्रता का अपमान तथा कष्ट जितना भोगता था, उतना ही उसकी प्रतिज्ञा अपने माता-पिता को दरिद्रता के बन्धन से मुक्त करने की दृढ़ हो जाती थी।

कालीपद ने अपने को अत्यन्त संकुचित बनाकर सब के लक्ष से अपने को हटा रखने की चेष्टा की, परन्तु ऐसा करने पर भी

उपद्रव में कोई कमी नहीं हुई। एक दिन उसने देखा कि उसके चीना बाजार के एक पैर के जूते के बदले में, एक बहुत बढ़िया विलायती जूता रक्खा हुआ है। इस प्रकार बेजोड़ जूता पहन कर कालेज में जाना सम्भव नहीं था। उसने इस सम्बन्ध में किसी प्रकार की शिकायत न करके उस विलायती जूते को कमरे के बाहर रख दिया तथा जूता की मरम्मत करने वाले मोची से कम दाम का एक जूता खरीद कर काम चलाने लगा। एक दिन ऊपर की मंजिल से अचानक ही एक लड़के ने आकर कालीपद से पूछा—'क्या आप भूल से मेरे कमरे से मेरा सिगरेट केस ले आये हैं ? वह मुझे कहीं भी नहीं मिल रहा है।' कालीपद ने दुखित होकर कहा—'मैं तो आपके कमरे में गया तक नहीं।' 'यह तो पड़ा हुआ है।' कह कर वह लड़का कमरे के एक कोने से कीमती सिगरेट केस उठाकर तथा कुछ न कह कर ऊपर चला गया।

कालीपद ने मन ही मन निश्चय किया कि 'यदि एफ० ए० की परीक्षा में अच्छी प्रकार छात्रवृति मिल जायगी तो इस मैस को छोड़कर कहीं दूसरी जगह चला जाऊँगा।'

मैस के सब लड़के प्रतिवर्ष बड़ी धूम-धाम से सरस्वती की पूजा करते थे। पूजा में जो व्यय होता था उसका अधिक भार शैलेन्द्र ही देता था, परन्तु चन्दा सभी लड़के देते थे। पिछली वर्ष किसी ने भी अवज्ञा के भाव से कालीपद से चन्दा नहीं माँगा। इस वर्ष केवल कालीपद को परेशान करने के लिये ही लड़कों ने कालीपद के सम्मुख चन्दे का हिसाब लाकर रख दिया। कालीपद ने जिन लड़कों से किसी दिन कोई भी सहायता नहीं ली थी, जिनके आमोद-प्रमोद तथा उत्सवों में उसने कभी कोई भाग नहीं लिया था, जब वे ही सब लोग उससे चन्दा माँगने आये, तब न जाने क्या

सोचकर उसने चंदे में पाँच रुपये दे डाले । शैलेन्द्र को अपने साथियों में से किसी ने भी पाँच रुपये का चंदा नहीं दिया था ।

अब तक कालीपद की गरीबी से सब उसको अवज्ञा की दृष्टि से देखते रहे, परन्तु आज उसका पाँच रुपये दान उन लोगों के लिये असहनीय हो गया । उसमें से कुछ ने कहा—'हम लोगों से यह बात छिपी नहीं है कि उसकी अवस्था कैसी है, तब फिर यह इतना बड़प्पन क्यों दिखा रहा है । इस प्रकार यह हम सभी को नीचा दिखाना चाहता है ।'

सरस्वती-पूजा धूमधाम से की गई । कालीपद ने जो पाँच रुपये चंदे में दिये थे, उनके न देने पर भी उत्सव पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता । परन्तु कालीपद के लिये यह बात लागू नहीं हो सकती थी । उसे पराये घर में रह कर खाना पड़ता था । प्रति-दिन ठीक समय पर खाना नहीं मिलता था । इसके अतिरिक्त रसोई घर के नौकर-चाकर ही उसके भाग्य-विधाता थे । इस कारण भला-बुरा, कम अधिक के विषय में कोई अप्रिय समालोचना न करके जल-पान का कुछ सहारा उसको अपने पास रखना ही पड़ता था । परन्तु यह सहारा गेंदे के फूलों के सूखे स्तूपों के साथ ही विसर्जित देवी प्रतिमा के पीछे अन्तर्ध्यान हो गया ।

कालीपद के सिर का दर्द दिन पर दिन बढ़ता ही गया । इस बार वह परीक्षा में छात्रवृत्ति प्राप्त तो न कर सका, परन्तु फेल भी नहीं हुआ । इस कारण पढ़ने के समय में कमी करके उसको एक और ट्यूशन का प्रबन्ध करना पड़ा, तथा खूब उपद्रव होते रहने पर भी यह बिना किराये का कमरा वह न छोड़ सका ।

ऊपर की मंजिल में रहने वाले लड़कों ने सोचा था कि इस बार पूजा की छुट्टी के पश्चात् कालीपद इस मैस में अब नहीं आयेगा परन्तु ठीक समय पर नीचे की कोठरी का द्वार खुल

गया । सदा की भाँति कालीपद ने अपना गन्दा कोट पहने हुए अपनी कोठरी में प्रवेश किया । तथा एक मैले-कुचैले कपड़े से बँधी हुई खूब बड़ी गठरी तथा टीन का एक बक्स लिये मजदूर आया और वह सामान नीचे उतार कर बैठ गया । श्यालदह से वह सामान ढोकर ले आया था । मजदूरी के विषय में दोनों में वाद-प्रतिवाद होने के पश्चात् कालीपद ने उसकी मजदूरी चुकता करके उसे विदा किया । उसकी माँ में गठरी ने कच्चे आम, बेर. अचार आदि अनेक रोचक सामग्री मिट्टी के बर्तन में बन्द करके रख दी थीं । कालीपद यह जानता था कि उसकी अनुपस्थिति में ऊपरी मंजिल से मज़ाक करने वाले लड़के उसके कमरे में आते-जाते रहते हैं । उसको और तो किसी बात की चिंता नहीं थी, केवल यही एक आशङ्का बनी रहती थी कि माता-पिता ने बड़े स्नेह से जो ये सब चीजें भेजी हैं, उनका आभास होने पर सब लड़के व्यंग आदि से उसे परेशान ही करेंगे । वह इसी कारण से इन सब चीजों को छुपा कर रखना चाहता था । इसलिये वह यदि पाँच मिनट के लिये भी बाहर जाता तो कमरे में ताला लगा कर जाता था ।

इस प्रकार कालीपद की इस सतर्कता पर सभी की दृष्टि पड़ गई । शैलेन्द्र ने कहा—'धन तो वास्तव में बहुत अधिक है । चोर का लोभ बढ़ जाता है, यह तो बैंक खुल गया है । उसका हम लोगों पर विश्वास नहीं है, कहीं हम लोग उसका कोट न चुरा लें । अरे भाई जरा भले आदमी के पहनने योग्य एक कोट उसे न खरीद देने से तो काम न चलेगा । मेरी तो सदैव उसका वही कोट देखते २ तबियत ऊब गई है ।'

शैलेन्द्र ने कभी उस गंदी कोठरी में प्रवेश नहीं किया था । वह सीढ़ियों से ऊपर चढ़ते समय उस कोठरी का दृश्य देखते ही संकुचित हो जाता था । विशेषतः जब सन्ध्या को वह देखता कि

वायुरहित उस अँधेरी कोठरी में टिमटिमाते दीपक के सामने वाली कोठरी में झुक कर पढ़ने में व्यस्त है, तब वह हाँपने लगता था। उसने अपने साथियों से कहा—'इस बार कालीपद कौन-सी ऐसी अमूल्य वस्तु लेकर आया है, तुम इसका पता लगाओ।'

कालीपद के कमरे का ताला बहुत ही साधारण था। वह चोरों को अन्दर जाने से रोकने में बहुत ही कमज़ोर था। ऐसी कोई चाबी नहीं थी जिससे वह न खुलता। एक दिन शाम को कालीपद लड़के को पढ़ाने चला गया था। एसी अवसर पर लड़कों ने हँसते-हँसते उसके कमरे का ताला खोलकर उसमें प्रवेश किया। चौकी के नीचे छिपाकर रक्खी हुई चीज़ों को दोनों ने देखा। उसमें अचार, चटनी तथा अन्य चीजें मिलीं। उनकी समझ में यह बात नहीं आई कि इन चीज़ों को छिपाकर रखने की क्या आवश्यकता थी।

खोज करते २ तकिये के नीचे एक रिंगदार चाबियों का गुच्छा मिला, उसकी एक चाबी से टीन का बक्स खोला गया। उसमें कुछ मैले-कुचैले कपड़े, कुछ पुस्तकें, कैंची, चाकू, क़लम, पैंसिल आदि मिलीं। वे लोग उस बक्स को बन्द करके ही जा रहे थे कि कपड़ों के नीचे, रूमाल के भीतर लपेटी हुई उन्हें कोई चीज मिल गई। रूमाल खोलने पर फटे कपड़े की एक पोटरी दिखाई पड़ी। उन्होंने पोटली को भी खोला। उसके भीतर दो-तीन क़ागज़ों की परतों में लपेटा हुआ पचास रुपये का नोट निकल पड़ा। इस नोट को देखते ही उनकी हँसी निकल पड़ी। जोरों का ठाटा मच गया। सब की समझ में यह बात आ गई कि कालीपद इसी नोट के लिये अपने कमरे में ताला लगाता रहता है। वह दुनियां के किसी भी आदमी पर विश्वास नहीं रख सकता। कालीपद की

कंजूसी तथा उसका संदेहयुक्त प्रभाव देखकर शैलेन्द्र के साथियों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

उसी समय कालीपद के खाँसने की आवाज सुनाई दी। वे दोनों लड़के उसी क्षण बक्स का ताला लगा कर नोट हाथ में लिये भाग चले। एक ने शीघ्र ही कमरे के दरवाजे का ताला बंद कर दिया।

शैलेन्द्र वह नोट देखकर खूब हँसा। यद्यपि शैलेन्द्र के लिये पचास रुपये कोई बड़ी चीज नहीं थी। फिर भी कालीपद के पास इतने रुपये रह सकते हैं, उसका व्यवहार देखकर कोई भी नहीं समझ सका। इसी नोट के लिये इतनी सावधानी। सभी ने निश्चय किया कि यह देखना चाहिये कि इस नोट को खोकर यह विचित्र लड़का क्या करता है।

कालीपद रात के नौ बजे लड़के को पढ़ाकर आया। उसने कमरे की अवस्था पर कोई ध्यान नहीं दिया क्योंकि उसके सिर में अत्यंत पीड़ा थी। उसके मन में यह धारणा बनी हुई थी कि सिर की कुछ पीड़ा अभी कुछ और दिन चलेगी।

दूसरे दिन उसको जो कपड़े निकालने की आवश्यकता हुई तो चौकी के नीचे से बक्स निकालने पर उसने देखा कि वह खुला हुआ है। कालीपद कभी असावधान नहीं रहता था, फिर भी उसने यह सोचा कि शायद वह उसमें ताला लगाना भूल गया होगा। क्योंकि यदि कोई चोर आता तो बाहर का दरवाजा भी खुला रहता'।

उसने जब बक्स खोला तो देखा कि सभी चीजें इधर-उधर उलट-पलट हो गई हैं। उसका हृदय धड़क उठा। झटपट उसने ध्यान से सब चीजों को देखा तो माता का दिया हुआ वह नोट उसमें से लापता था। जिन कपड़े तथा कागजों में वह रक्खा

था, वे सब मौजूद थे। कालीपद बार-बार सभी कपड़ों को झाड़ने लगा, परन्तु नोट कहीं नहीं मिला। इधर ऊपर की मंजिल से कई लड़के बार-बार नीचे उतरने लगे और झांकने लगे। ऊपर हँसी की धूम मच रही थी।

कालीपद को जब नोट मिलने की कोई आशा नहीं रही तथा सिर में दर्द रहने के कारण चीजों को हिलाना सम्भव नहीं रहा, तब वह बिस्तर पर पट होकर मृतक की भाँति लेट गया। यह नोट इसकी माता ने बड़े कष्टों से संचित करके उसे दिया था। पहले वह अपने घर के दुखों का इतिहास कुछ भी नहीं जानता था तथा अपनी माता का बोझा बढ़ाता ही जा रहा था। अन्त में जब माँ ने उसको भलीभाँति समझा-बुझा कर अपना साथी बना लिया, उस दिन उसने अपने जीवन का अपूर्व गौरव अनुभव किया। कालीपद को जो महत्वपूर्ण वाणी मिली थी, जो आशीर्वाद प्राप्त हुआ था, उसकी पूर्णता उसी नोट में हुई थी। अथाह स्नेह समुद्र का मन्थन कर, माता ने अपने अमूल्य दुखों का जो उपहार दिया था, उसका इस प्रकार चोरी हो जाना कालीपद को एक पायश्चिक अभिशाप की तरह प्रतीत हुआ। पास की सीढ़ियों से उतरने चढ़ने वालों के पैरों की आवाज आज उसे बार-बार सुनाई पड़ने लगी। आज बिना किसी कारण के ऊपर चढ़ने और उतरने में कोई भी रुकावट नहीं पड़ रही थी। गाँव में आग लगकर सब जल कर भस्म होता जा रहा है तथा ठीक उसके समीप ही कल-कल करती हुई नदी अविराम गति से बह रही है, यह घटना भी उसी के समान थी।

कालीपद को ऊपर की मंजिल पर यकायक जोर से हँसने की आवाज सुनकर अनुभव हुआ कि यह चोरों का काम नहीं है। वह समझ गया कि शैलेन्द्र के साथी ही मजाक में उसका वह नोट

गये हैं। यदि चोर उस नोट को चुरा ले जाते तो उसके मन में इतनी चोट नहीं लगती। उसके हृदय में यही भाव आने लगे, मानो धन के मद से गर्वित युवकों ने उसकी माँ के शरीर पर हाथ उठाया हो। कालीपद इतने दिनों से इस मैस में रहता है परन्तु वह एक दिन भी ऊपर की मंजिल पर नहीं गया था। आज फटी पुरानी गंजी पहने, नंगे पैर मनोवेग से तथा सिर दर्द की उत्तेजना से उसका चेहरा लाल हो उठा था। उसी दशा में तेजी से वह ऊपर चढ़ गया।

आज इतवार था। किसी को कालेज नहीं जाना था। ऊपर के बरामदे में कुछ लड़के तो चौकी पर तथा कुछ बेंत के मोढ़े पर बैठ कर हँसी-मजाक की बातें कर रहे थे। कालीपद न लोगों के पास दौड़ता हुआ पहुँचा। तथा बड़े क्रोध से बोला—'दीजिये! मेरा नोट, मेरा नोट मुझे लौटा दीजिये।'

यदि कालीपद नम्र स्वर में यह बात कहता तो उसे अवश्य ही उसका फल प्राप्त होता इसमें कोई सन्देह नहीं। परन्तु उसका क्रोध भरा चेहरा देखकर शैलेन्द्र बहुत ही बिगड़ उठा। उस समय यदि उसके घर का दर्बान वहाँ होता तो उसे धक्के लगवा कर बाहर निकलवा देता। सभी यह सुनकर उठ खड़े हुए तथा एक साथ गरज कर बोले—'आप क्या कहते हैं महाशय! कैसा नोट?'

कालीपद ने कहा—'आप लोग मेरे बक्से से नोट ले आये हैं।'

'इतनी बड़ी बात! इस प्रकार आप हम लोगों को चोर बनाना चाहते हैं।'

उस समय कालीपद के हाथ में यदि कुछ होता तो वह खून खराबी कर बैठता। उसके मनोभाव को देखकर चार-पाँच लड़कों ने मिलकर उसका हाथ पकड़ लिया। वह जाल में फसे हुए बाघ के समान गुर्राने लगा।

इस अन्याय का प्रतिकार करने की उसमें कोई शक्ति नहीं है, न कोई प्रमाण ही है। सभी उसके सन्देह को पागलपन कह कर उड़ा देंगे। जिन लोगों ने उसके ऊपर मृत्यु बाण चलाया था, वे लोग उसके आघात को असह्य समझ कर उछल-कूद मचाने लगे।

कालीपद को वह रात किस प्रकार व्यतीत करनी पड़ी यह कोई भी न जान सका। शैलेन्द्र ने एक सौ रुपये का नोट निकाल कर अपने साथियों से कहा—'जाओ उस गँवार को यह नोट दे आओ।'

साथियों ने कहा—'आप पागल हो गये हैं! पहिले उसका यह क्रोध तो शान्त हो जाय, वह हम सब से लिखित रूप से क्षमा याचना करे, इसके पश्चात् विचार करके देखा जायगा।'

सभी ठीक समय पर सोने चले गये तथा कुछ क्षण में ही सब सो गये। सवेरे सब लोग कालीपद की बात भूल गये थे। सबेरे कुछ लोगों को सीढ़ियों से नीचे उतरते समय उसके कमरे से बोलने की आवाज़ सुनाई पड़ी। लड़कों ने सोचा; शायद वह वकील बुलाकर सलाह कर रहा है। दर्वाजा अन्दर से बन्द था। बाहर से कुछ लड़कों ने कान लगा कर सुना, उसकी बातों में कानूनी बात एक भी नहीं थी, सब व्यर्थ के असम्बद्ध प्रलाप थे।

ऊपर जाकर लड़कों ने इसकी शैलेन्द्र को खबर दी। शैलेन्द्र यह सुनकर नीचे उतर आया तथा उसके दर्वाजे के सामने खड़ा हो गया। कालीपद की बोली उसकी समझ में कुछ भी नहीं आ रही थी, रह-रह कर केवल 'बाबू जी', 'बाबू जी' की चीख ही सुनाई पड़ रही थी।

सब को डर मालूम हुआ कि शायद वह नोट के शोक में ही पागल हो गया है। बाहर से दो-तीन बार पुकारा—'कालीपद बाबू!' परन्तु किसी ने कोई उत्तर नहीं दिया। केवल वहीं पर बड़-

बड़ाना जारी रहा । शैलेन्द्र ने पुनः ऊँचे स्वर से कहा—'कालीपद बाबू दर्वाजा खोलिये, आपका वह नोट मिल गया है ।' दर्वाजा नहीं खुला, केवल बड़बड़ाने की धीमी आवाज सुनाई पड़ती रही ।

शैलेन्द्र ने इसकी कल्पना भी नहीं की थी, कि यह बात इतनी दूर तक पहुँच जायगी । उसने मुख से अपने साथियों के सम्मुख पश्चाताप प्रकट नहीं किया परन्तु उसके मन में व्यथा होने लगी । उसने कहा—'दर्वाजा तोड़ा जाय ।'

किसी किसी ने राय दी—पुलिस बुलाई जाय—कौन जाने शायद पागल होकर वह कुछ कर बैठे । कल के काण्ड को देखकर आज साहस नहीं होता ।

शैलेन्द्र ने कहा—'नहीं शीघ्र ही एक आदमी आकर, डाक्टर-अनादि को बुला लाओ ।'

डाक्टर-अनादि का मकान पास ही था । उन्होंने पास आकर दर्वाजे पर कान लगा कर कहा—'यह तो विकार सा ही प्रतीत होता है ।'

दर्वाजा तोड़ डाला गया, सबने अन्दर घुसते ही देखा कि बिस्तर इधर-उधर बिखर गया है तथा उसका कुछ भाग जमीन पर पड़ा हुआ है । कालीपद जमीन पर पड़ा था, उसको होश नहीं था । वह लोट रहा था, हाथ-पैर पटक रहा था तथा प्रलाप कर रहा था । उसकी दोनों लाल आँखें खुली हुई थीं तथा उसके चेहरे पर मानो रक्त छा गया था ।

डाक्टर अनादि उसकी नाड़ी की परीक्षा करके बोले—'यहाँ पर इसका कोई परिचित आदमी है ?"

यह सुनकर शैलेन्द्र का चेहरा फीका पड़ गया । उसने डरते हुए पूछा—'क्यों क्या हुआ बताइये तो ?'

डाक्टर ने गम्भीर होकर कहा—'खबर देना ठीक है, लक्षण अच्छे नजर नहीं आते।'

शैलेन्द्र ने कहा—'हम लोगों का इसके साथ अच्छी तरह परिचय या मेल-जोल नहीं है। मैं इसके आत्मीयजनों की खबर कुछ भी नही जानता। मैं उनका पता लगाऊँगा। परन्तु इस समय क्या करना चाहिये ?'

डाक्टर ने कहा—'रोगी को इसी क्षण इस कमरे से निकाल कर दूसरी मंजिल के किसी अच्छे कमरे में ले जाना चाहिये। दिन-रात इसकी शुश्रूषा की ठीक व्यवस्था होनी चाहिये।'

शैलेन्द्र तुरन्त रोगी को अपने कमरे में ले गया अपने साथियों को कमरे से हटा कर वह कालीपद के माथे पर बर्फ की थैली रख कर अपने हाथ से पंखा झलने लगा।

कालीपद ने इस आशंका से कि ऊपर की मंजिल में रहने वाले उसकी अवज्ञा करने लगेंगे या परिहास करने लगेंगे अपने माता-पिता का परिचय उन लोगों से छिपा रक्खा था। वह माता-पिता के लिये जो चिट्ठी लिखता था उन्हें स्वयं ही डाकखाने में छोड़ आता था तथा उसके नाम की सब चिट्ठियाँ डाकखाने के पते से ही आती थीं। वह स्वयं प्रतिदिन वहाँ जाकर उन्हें ले आता था।

कालीपद के मकान का परिचय प्राप्त करने के लिये फिर एक बार उसका बक्स खोलना पड़ा। उसके बक्स में पत्रों के दो पुलन्दे थे। प्रत्येक पुलन्दा अत्यन्त ही सावधानी के साथ फीते से बँधा हुआ था। एक पुलन्दे में उसकी माँ के पत्र थे, तथा दूसरे में उसके पिता के। माँ के पत्रों की संख्या कम थी अधिकतर पिता के ही पत्र थे।

शैलेन्द्र ने उन पत्रों को लाकर कमरे का दर्वाजा बन्द कर

दिया । कालीपद के पलंग के पास बैठकर वह उन पत्रों को पढ़ने लगा । पत्र में ठिकाना पढ़ने के साथ ही वह चौंक उठा । शनि-थाड़ी चौधरी की हवेली, छै: आना । नीचे नाम लिखा था भवानी-चरण देव शर्मा । भवानीचरण चौधरी ।

पत्र को पढ़ कर शलेन्द्र स्तब्ध होकर बैठ गया । वह कालीपद के चेहरे को देखने लगा । कुछ दिनों पूर्व उसके साथियों में से किसी ने कहा था कि उसके चेहरे के साथ कालीपद के चेहरे का बहुत कुछ सामंजस्य है । उस समय वह बात उसे अच्छी नहीं लगी थी तथा अन्य साथियों ने हँस कर उस बात को उड़ा दिया था । आज वह समझ गया कि वह बात निराधार नहीं हुई । उसके दादा दो भाई थे, श्यामचरण और भवानीचरण, वह यह बात जानता था । उसके पश्चात् के इतिहास की उसके घर में कभी आलोचना नहीं हुई । वह यह बात नहीं जानता था कि भवानी-चरण से कोई पुत्र है और उसका नाम कालीपद है । यही काली-पद है ? यही उसके चाचा हैं ।

शैलेन्द्र को तब याद आने लगा कि शैलेन्द्र की दादी, श्यामा-चरण की स्त्री जब तक जीवित रहीं, तब तक परमस्नेह से वे भवानीचरण के बारे में बातें करती थीं । उनकी आँखों में उनका नाम लेते समय आँसू भर आते थे । भवानीचरण देवर अवश्य थे परन्तु उनके लड़के से भी कम उम्र के थे । उन्होंने उसको अपने पुत्र के समान पाला पोसा था । जब जायदाद का बटवारा हो जाने पर वे लोग अलग हो गये तब वे भवानीचरण का समाचार पाने के लिये निरन्तर तड़पती रहती थीं । वे बार-बार अपने लड़कों से कहती थीं—'भवानीचरण अत्यन्त सीधा सादा नासमझ लड़का है, इसी कारण उन लोगों ने उसे धोखा दिया है-मेरे श्वसुर उसको बहुत अधिक प्यार करते थे, मैं इस बात में विश्वास नहीं करती कि वे उसको जायदाद से वंचित कर जायेंगे ।' इस बात से उनके लड़के

बहुत नाराज होते थे तथा शैलेन्द्र को याद आने लगा कि वह भी दादी पर बहुत रंज हो जाता था। यहाँ तक कि दादी उनका बहुत पक्षपात करती थी इस कारण वह भवानीचरण पर भी बिगड़ जाता था। वर्तमान समय पर भवानीचरण अपना समय ऐसी दरिद्रता से बिता रहे हैं यह भी वह नहीं जानता था। कालीपद की अवस्था देखकर वह सारी बातें समझ गया, तथा इतने दिनों तक अनेकों प्रलोभनों के रहते हुए भी कालीपद उसके अनुचरों की श्रेणी में नहीं आया। उससे उसने बहुत ही गौरव अनुभव किया। यदि कालीपद भी अन्य लड़कों की भाँति उसके अनुचरों की श्रेणी में आ गया होता तो आज उसकी लज्जा का अन्त नहीं रहता।

४

शैलेन्द्र के दल के लड़के अब तक प्रतिदिन ही कालीपद को तंग करते थे, चिड़ाते थे, परेशान करते थे तथा अपमानित करते थे। वह इस मकान में उन लोगों के बीच अपने चाचा को न रख सका। डाक्टरों से परामर्श करके कालीपद को उसने एक अच्छे दूसरे मकान में पहुंचा दिया।

भवानीचरण को जब शैलेन्द्र का पत्र मिला तो वे एक साथी को लेकर तुरन्त कलकत्ता आ पहुँचे। आते समय रासमणि ने अपने बड़े कष्टों से जमा किये हुए रुपयों में अधिकांश ही पति के हाथ में देते हुए कहा—'देखो, लड़के को किसी प्रकार का कष्ट न हो, देखभाल में किसी प्रकार की भी कमी नहीं रहने पावे। यदि आवश्यकता समझो तो खबर देना, मैं तुरन्त चली आऊँगी।' चौधरी घराने की बहू के लिये इस प्रकार बेधड़क कलकत्ता जाने का प्रस्ताव ऐसा असंगत है कि वे पहली खबर मिलते ही न जा सकीं। उन्होंने काली जी की मनौती की, तथा पंडित जी को बुलाकर ग्रहों की शान्ति के लिये अनुष्ठान का प्रबन्ध किया।

कालीपद की दशा देखकर भवानीचरण घबड़ा उठे। उस समय कालीपद को अच्छी तरह होश नहीं हुआ था। उसने उनको डाक्टर साहब कह कर पुकारा। यह सुनकर उनकी छाती फटने लगी। कालीपद प्रायः बीच-बीच में 'बाबूजी' 'बाबूजी' कह कर पुकार उठता था। वे उसका हाथ पकड़ उसके मुँह के पास ले जाकर ऊँचे स्वर से कहने लगे—'यहीं तो हूँ बेटा! मैं आ गया हूँ।' परन्तु उसके चेहरे से यह भाव प्रकट नहीं हुआ कि उसने उसको पहचान लिया है।

डाक्टर ने कहा—'पहिले से अब ज्वर कुछ कम हो गया है, शायद अब हालत कुछ सुधरने लगेगी।' भवानीचरण यह ख्याल भी मन में नहीं ला सकते थे, कि कालीपद की हालत न सुधरेगी। विशेषतः लड़के के बचपन से ही सब लोग कहते आये हैं कि वह बड़ा होकर असम्भव कार्यों को भी सम्भव करेगा। भवानीचरण का इस बात पर पक्का विश्वास था। कालीपद अवश्य जीवित रहेगा, यह तो उसके भाग्य में लिखा हुआ है। इस कारण डाक्टर जो कुछ भी कहते हैं वे उनसे कहीं अधिक सुन लेते हैं तथा रासमणि को जो चिट्ठी लिखते हैं उसमें आशंका की कोई बात नहीं रहती।

भवानीचरण शैलेन्द्र के व्यवहार से आश्चर्य में पड़ गये। यह बात कौन सोच सकता है? कि वह उनका परम आत्मीय नहीं है? विशेषतः कलकत्ते का पढ़ा-लिखा सभ्य लड़का होते हुए भी वह उनकी जैसी भक्ति श्रद्धा करता है, ऐसा तो देखा ही नहीं जाता। वे सोचने लगे कि शायद कलकत्ते के लड़कों का स्वभाव ही ऐसा होता हो। उन्होंने मन ही मन सोचा—यह तो होना ही चाहिये, देहात के लड़कों की शिक्षा तथा सत्संग ही क्या है?

कालीपद का ज्वर धीरे-धीरे घटने लगा तथा धीरे-धीरे वह होश में आने लगा वह पिता को अपने बिछौने के पास देखकर

चौंक पड़ा। सोचने लगा कि कलकत्ते में जिस दशा में वह रहता है वह पिता को मालूम हो जायगी। इससे भी बढ़ कर यह चिन्ता का विषय हो जायगा कि उसके देहाती पिता शहरी लड़कों के परिहास के पात्र बन जायेंगे। चारों ओर दृष्टि दौड़ा कर भी वह यह नहीं समझ सका कि यह मकान कौनसा है। वह सोचने लगा—'क्या मैं स्वप्न देख रहा हूँ?'

उस समय उसमें अधिक सोचने की शक्ति नहीं थी। उसे मालूम हुआ कि बीमारी का समाचार पाकर उसके पिता यहाँ आये हैं तथा एक अच्छे मकान में उन्होंने उसे लाकर रक्खा है। वे किस प्रकार ऐसे मकान में ले आये, कहाँ से खर्च कर रहे हैं, इस प्रकार इतना खर्च करते रहने से बाद को कैसा संकट उपस्थित होगा, यह सब सोचने का समय उसको नहीं था।

एक दिन जब उसके पिता कमरे में नहीं थे, तभी शैलेन्द्र ने एक तश्तरी में कुछ फल लाकर उसके सामने रख दिये। कालीपद अवाक् होकर शैलेन्द्र के चेहरे की ओर देखता रहा। वह सोचने लगा इसमें कुछ मजाक तो नहीं है। पहिली बात उसके मन में यही आई कि अपने पिता को तो इसके हाथ से बचाना ही होगा।

शैलेन्द्र ने फलों की तश्तरी मेज पर रख कर कालीपद के पैर छू कर प्रणाम किया तथा कहा—'मुझे आप क्षमा करें, मैंने बहुत बड़ा अपराध किया है।'

कालीपद यह सुनकर घबड़ा उठा। वह शैलेन्द्र का चेहरा देखते ही समझ गया कि इसमें कोई कपट का भाव नहीं है। सर्व-प्रथम जब कालीपद मैस में आया था, तब शैलेन्द्र का पूर्ण यौवन से चमकता हुआ चेहरा देखकर वह उसकी तरफ आकर्षित बना रहता था, परन्तु अपनी दरिद्रता के कारण सकुचने से वह किसी

भी दिन उसके पास नहीं गया। यदि वह उसके समान श्रेणी का होता, यदि मित्र की हैसियत से उसके पास आने का अधिकार उसको होता तो वह बहुत ही प्रसन्न होता, परन्तु बिलकुल निकट रहते हुये भी बीच में जो अन्तर पड़ा हुआ था, उसे लाँघ कर पार करने का कोई उपाय नहीं था। शैलेन्द्र जब सीढ़ियों से उतरता या चढ़ता, तब उसके बहुमूल्य कपड़ों की सुगन्धि उसकी अँधेरी कोठरी में प्रवेश करती थी। उस क्षण वह अपना पढ़ना छोड़ कर, उस हँसी से भरे प्रसन्न मुख की ओर देखे बिना नहीं रहता था। उसी क्षण उसकी सील से भरी गन्दी कोठरी में सौन्दर्य लोक के ऐश्वर्य से निकलने वाली एक किरण आ पड़ती थी। उसके पश्चात् उस शैलेन्द्र की निष्ठुर करुणता उसके लिये कैसी सन्घातिक हो उठती थी, यह बात सभी को ज्ञात है। आज जब शैलेन्द्र ने फलों से भरी हुई तश्तरी उसके सामने लाकर रक्खी, तब कालीपद ने लम्बी साँस लेकर एक बार उस सुन्दर मुख की ओर देखा। क्षमा की बात को उसने मुख से भी नहीं निकाला। वह धीरे-धीरे फल खाने लगा। इसी से उसका मनोभाव प्रकट हो गया।

कालीपद प्रतिदिन आश्चर्य के साथ देखता कि उसके देहाती पिता भवानीचरण के साथ शैलेन्द्र की खूब घनिष्टता बढ़ती जा रही है। शैलेन्द्र उनको दादाजी कहता है तथा दोनों में खूब हँसी-मजाक चलता रहता है। इन दोनों में हँसी-मजाक की प्रधान लक्ष्य थी—अनुपस्थित दादीजी। इतने दिनों के पश्चात् दक्षिण वायु के झोंके से भवानीचरण के मन में मानो यौवन काल की स्मृति का आनंद प्रस्फुटित होने लगा। दादीजी ने अपने हाथ से अचार अमावट आदि की जो चीजें तैयार करके भेजी थीं उनको रोगी से छिपाकर खा जाने की बात शैलेन्द्र ने बिना किसी लज्जा के आज स्वीकार कर ली। चोरी के समाचार से कालीपद के मन को बहुत आनन्द प्राप्त

हुआ। वह अपनी माँ के हाथ की बनाई हुई चीजें दुनियां के सब लोगों को खिलाना चाहता है, यदि वे लोग उनका आदर कर सकें। आज कालीपद के लिये अपनी रोगशैया आनन्द सभा के समान बन गई। उसे ऐसा सुख अपने जीवन में कम ही प्राप्त हुआ था। उसके मन में बार-बार यही बात आने लगी यदि आज माँ यहाँ होतीं तो वे इस हास्य कौतुक स्वभाव वाले युवक को कितना स्नेह करतीं।

रोगी कालीपद के आनन्द प्रवाह में केवल एक विषय की आलोचना से ही बीच-बीच में बाधा पड़ती थी। उसके हृदय में मानो दरिद्रता का एक प्रकार का अभिमान था। किसी समय उन लोगों का बड़ा ऐश्वर्य और सम्मान था, इस विषय को लेकर व्यर्थ ही गर्व करने में वह लज्जा का अनुभव करता था। वह इस बात को छिपाकर रखना बिलकुल भी पसन्द नहीं करता था कि हम लोग गरीब हैं। भवानीचरण भी कभी ऐश्वर्य के दिनों की बातें उठाकर गर्व प्रकट नहीं करते थे, परन्तु वे दिन सुख के थे, युवावस्था के थे, विश्वासघातकता की वीभत्स मूर्त्ति उस समय प्रकट नहीं हुई थी। विशेषतः श्यामाचरण की स्त्री, उनकी भाभी रमासुन्दरी जब घर की मालकिन थीं, उस समय लक्ष्मी से भरे हुए भंडार के द्वार पर खड़े रह कर उन्हें कितना आनन्द मिलता था। उन्हें बीते हुये सुख के दिनों की स्मृति से ही भवानीचरण के जीवन की संध्या स्वर्ण-मंडित है, परन्तु इस सुख-स्मृति की आलोचना में घूम-फिर कर केवल वसीयतनामे की चोरी वाली बात भी बार-बार आ पड़ती है। भवानीचरण उस विषय की आलोचना से अत्यन्त ही उत्तेजित हो उठते हैं। उनको उस वसीयतनामे के पुनः मिल जाने में कोई सन्देह नहीं था। उनकी सती साध्वी माता की बात कभी झूँठी नहीं हो सकती। कालीपद इस बात की चर्चा उठते ही मन ही मन

घबरा उठता था। वह जानता था कि यह उसके पिता के पागलपन के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। उसके पिता की यह दुर्बलता शैलेन्द्र को ज्ञात हो जाय, वह यह पसन्द नहीं करता। उसने कई बार अपने पिता से कहा था कि नहीं बाबूजी, यह तो आपको झूँठा सन्देह है; परन्तु ऐसे तर्कों से उसे उल्टा फल प्राप्त होता था वे अपने सन्देह की सच्चाई सिद्ध करने के लिये सम्पूर्ण घटना सुनाने लगते थे। उस समय कालीपद बड़ी चेष्टा करने के पश्चात् भी उनको रोकने में असमर्थ रहता था।

कालीपद विशेषत: इस बात को भी लक्ष्य करता था कि शैलेन्द्र को भी यह प्रसंग नहीं रुचता। वह भी मानो कुछ उत्तेजित होकर भवानीचरण की युक्ति का खंडन करने की चेष्टा करता था। दूसरी सभी बातों में भवानीचरण लोगों का मत मानने को तैयार थे, परन्तु इस सम्बन्ध में वे किसी भी तर्क को स्वीकार करने में प्रस्तुत नहीं थे। उनकी माँ पढ़ी-लिखी थीं, उन्होंने उनके पिता का वसीयतनामा तथा अन्य दस्तावेज अपने ही हाथों से लोहे के सन्दूक में रख दिये थे, फिर भी उनके सम्मुख ही मां ने जब बक्स खोला, तब सभी दस्तावेज जैसे के तैसे थे, परन्तु उसमें वसीयतनामा नहीं था। इसे यदि चोरी न कहा जाय तो और क्या कहा जायगा ?

कालीपद पिता को शान्त करने के लिये कहता— 'पिताजी, ठीक ही तो हैं। जो लोग आपकी जायदाद भोग रहे हैं, वे भी तो आपके लड़के के समान ही हैं। वे लोग आपके खास भतीजे ही तो हैं। वह सम्पत्ति आपके पिता के वंश में ही है, यही क्या कम प्रसन्नता की बात है ?'

शैलेन्द्र को इस प्रकार की बातें भली नहीं लगती थीं। वह उसे सह नहीं सकता था। वह कमरा छोड़कर कहीं और चला

जाता था। इससे कालीपद के मन में कभी-कभी आघात पहुँचता। वह सोचने लगता—'शैलेन्द्र सम्भवतः उसके पिता को अर्थ-लोलुप समझ रहा है। वह चाहता था कि शैलेन्द्र को किसी प्रकार समझा दे कि उसके पिता में अर्थ-लिप्सा की गन्धमात्र भी नहीं है।

अब तक कालीपद तथा भवानीचरण को शैलेन्द्र अवश्य ही अपना परिचय दे देता परन्तु वसीयतनामे की चोरी की बात ने ही इसमें बाधा पहुँचा दी। वह इस बात पर कभी विश्वास नहीं कर सकता कि उसके पिता तथा दादा ने ही वसीयतनामा चुराया है। फिर भी, भवानीचरण को पैतृक-सम्पति से वंचित करना, वास्तव में, निष्ठुर अन्याय है—इस बात को वह किसी भी प्रकार अस्वीकार नहीं कर सका। अस्तु, उसने इस विषय की चर्चा ही बन्द कर दी। व बिलकुल ही शाँत बना रहता, जब भी उसे मौका मिलता, वह उठ कर चला जाता।

कालीपद को अब भी तीसरे पहर कुछ ज्वर हो जाता था तथा सिर में दर्द होने लगता था, परन्तु वह इसको रोग मानने को ही तैयार नहीं था। उसका मन पढ़ाई करने के लिये बेचैन हो उठा। एक बार तो उसकी छात्रवृत्ति बिगड़ ही चुकी है, पुनः ऐसी बात होने से तो काम न चल सकेगा। वह शैलेन्द्र से छिपकर पढ़ने लगा। इस सम्बन्ध में डाक्टर की कठोर निषेधाज्ञा है, यह जानते हुए भी उसने कोई ध्यान नहीं दिया।

एक दिन कालीपद ने अपने पिता से कहा—'बाबू जी! अब आप घर चले जाइये। वहाँ माँ अकेली हैं, मैं तो अब बिलकुल ही ठीक हो गया हूँ।

शैलेन्द्र ने भी कहा—'आप चले जायेंगे तो कोई हानि नहीं होगी। मैं भी चिंता का कोई कारण नहीं देखता। जो कुछ

भी शिकायत शेष रह गई है, वह दो एक दिन में ही ठीक हो जायगी। फिर हम लोग तो यहाँ हैं ही।'

भवानीचरण बोले—'यह मैं भली प्रकार जानता हूँ कि कालीपद के लिये अब चिंता करने की कोई बात नहीं है। मुझे कलकत्ता आने की कोई आवश्यकता भी नहीं थी। फिर भी, मन नहीं मानता। भाई, विशेषत: तुम्हारी दादीजी जिस बात को पकड़ लेती हैं, उससे उन्हें हटा देने का कोई उपाय ही नहीं है।'

शैलेन्द्र हँस कर बोला—'दादा! आपने तो दादीजी को इतना आदर देकर बिलकुल ही मिट्टी का बना डाला है।'

भवानीचरण ने हँसकर कहा—'अच्छा भाई, अच्छा, जब घर में बहू लेकर जाओगे, तब देखा जायगा कि तुम्हारी शासन-व्यवस्था कैसी कठोर होती है।'

भवानीचरण रासमणि की सेवा से पले हुए जीव हैं। कलकत्ते में हर प्रकार का आराम रहने पर भी रासमणि के आदर-यत्न के अभाव की पूर्त्ति नहीं हो रही थी। इसलिये घर जाने के लिये उनको अधिक नहीं कहना पड़ा।

दूसरे दिन सबेरे सामान ठीक-ठाक करके भवानीचरण जाने के लिये तैयार होकर, कालीपद के कमरे में गये। उन्होंने देखा कि उसका चेहरा अत्यंत लाल हो उठा है। आँखें भी लाल हो उठी हैं। उसका शरीर भी अग्नि के समान जल रहा है। वह कल आधी रात तक लौजिक याद करता रहा था तथा शेष रात्रि में भी क्षण भर नहीं सो सका था।

अभी कालीपद की कमजोरी दूर नहीं हुई थी कि उस पर पुन: रोग का अनायास ही आक्रमण देखकर, डाक्टर अत्यंत चिंतित हो उठे। उन्होंने शैलेन्द्र को एकांत में बुलाकर कहा—'मैं इस बार तो लक्षण ठीक नहीं देखता।'

शैलेन्द्र ने भवानीचरण से कहा—'दादाजी ! आपको भी कष्ट हो रहा है और रोगी की सेवा भी शायद ठीक तरह से नहीं हो पा रही है । इसीलिये मैं कहता हूँ कि अब आप देर न करके दादीजी को बुला लें ।'

शैलेन्द्र ने इस प्रकार बात को बहुत छिपाकर कहा—'फिर भी भवानीचरण का हृदय एक बड़े भय से अभिभूत हो गया । उनके हाथ-पैर थर-थर काँपने लगे । वे बोले—'जो उचित समझो वही करो ।'

रासमणि के पास तुरंत पत्र भेज दिया गया । वे पत्र पाते ही बगलाचरण को साथ लेकर कलकत्ते आ गईं । शाम को कलकत्ता पहुँचने पर कुछ ही घण्टों तक उन्होंने कालीपद को जीवित देखा था । उसने विकार की अवस्था में बार-बार माँ को पुकारा था । उसकी वह पुकार उनके हृदय को बींधती रही ।

इस आघात को सहकर भवानीचरण किस प्रकार जीवित रह सकेंगे, इस भय से रासमणि को अपना शोक अच्छी प्रकार दिखाने का अवसर नहीं मिला । उनका पुत्र फिर उनके पति के अंदर जाकर विलीन हो गया । पति के भीतर, दोनों का ही भार अपने व्यथित हृदय पर उन्होंने उठा रक्खा । उनके प्राण बोले—'अब तो मुझ से नहीं सहा जायगा ।' फिर भी उन्हें सहना ही पड़ा ।

५

रात्रि बहुत व्यतीत हो चुकी थी । रासमणि गहन-शोक के श्रम से अभिभूत क्षण भर के लिये अचेतन सी सो गई थी, परंतु भवानीचरण को नींद नहीं आ रही थी । कुछ देर तक इधर-उधर करवट बदल कर भवानीचरण लम्बी साँस लेकर 'दयामय भगवान्'

कह कर काँपते हुए हाथ में दीपक लिये हुए, उस कमरे में चले गये, जिसमें बैठ कर कालीपद बचपन में पढ़ा करता था। उस समय वह गाँव के ही स्कूल में पढ़ा करता था। आज भी रासमणि के हाथ से तैयार की गई फटी-पुरानी कथरी चौकी पर बिछी हुई थी। उस पर कई स्थानों पर आज भी स्याही के दाग पड़े हुए थे। गन्दी दीवार पर कोयले से खींची हुई ज्योमेट्री की रेखायें दीख रही थीं। चौकी के एक कोने में रॉयल रीडर के तीसरे भाग का फटा हुआ अंश पड़ा हुआ था। हाय, हाय! बचपन का एक चप्पल भी कमरे के एक कोने में पड़ा हुआ उन्हें दिखाई दे गया। अब तक उस पर किसी की भी दृष्टि नहीं पड़ी थी।

भवानीचरण ताख पर दीपक को रख कर, उसी चौकी पर बैठ गये। उनके शुष्क नेत्रों से आँसू नहीं निकले, परन्तु उनकी छाती की विचित्र अवस्था हो गई। मानो सांस लेने में पसलियाँ टूटने लगीं। कमरे के पूर्व का द्वार खोलकर, छड़ पकड़ वे बाहर की ओर ताकने लगे।

अँधेरी रात थी। टिप्-टिप् शब्दों से वर्षा हो रही थी। सामने चहारदीवारी से घिरा हुआ घना जंगल था। कालीपद ने अपने पढ़ने की कोठरी के ठीक सामने एक बगीचा तैयार करने का प्रयत्न किया था। उसकी लगाई हुई लताओं की झाड़ियाँ पत्तियों से अब तक सुशोभित हो रही हैं। वे फल-फूलों से भरी हुई हैं।

भवानीचरण के प्राण आज उस बालक के यत्न से तैयार किये हुए बगीचे की ओर देखने से छटपटा उठे। गला मानो रुँध गया। अब कोई आशा नहीं रही। गर्मी के दिनों में पूजा के अवसर पर कालेज की छुट्टियाँ होती हैं, परन्तु जिसके अभाव में उनका दरिद्र घर शून्य हो गया है, वह अब किसी भी छुट्टी में घर नहीं लौटेगा। 'हाय मेरा बेटा'—कह कर भवानीचरण उसी जगह जमीन

पर बैठ गये। कालीपद अपने पिता की दरिद्रता को दूर करने के लिये कलकत्ता गया था, परन्तु वह इस संसार में अपने वृद्ध पिता को बिलकुल ही निराश्रय बना कर चला गया। बाहर वर्षा का वेग और भी बढ़ गया।

ऐसे ही समय में घास-पत्तियों के बीच किसी के पैरों की आहट सुनाई पड़ी। भवानीचरण की छाती धड़कने लगी। उन्होंने, जिस बात की आशा नहीं की जाती, मानो उसकी भी आशा कर ली। उनको प्रतीत हुआ मानो कालीपद बगीचा देखने के लिये आया है। परन्तु वर्षा जोरों से हो रही है, वह इसमें भीग जायगा। उनका मन इस असम्भव घबराहट से चंचल हो उठा। तभी कोई उनके कमरे के सामने, छड़ों के बाहर, क्षण भर के लिये आ खड़ा हुआ। उसने अपना सिर चादर से ढक लिया था। उसका मुँह पहिचानने में नहीं आता था, परन्तु वह उनको कालीपद के समान ही ज्ञात पड़ा। 'आ गये बेटा' कह कर भवानीचरण शीघ्र ही उठ कर बाहरी दरवाजा खोलने के लिये चल दिये। दर्वाजा खोल कर वे बगीचे में उस कमरे के सामने गये, परन्तु वहाँ कोई भी नहीं मिला। वे उस वर्षा में बगीचे में घूमने लगे। वहाँ कोई भी दिखाई नहीं पड़ा। निस्तब्ध रात्रि के अन्धकार के मध्य खड़े रह कर उन्होंने भर्राये हुए स्वरों में 'कालीपद' कह २ कर जोरों से पुकारा, परन्तु किसी की आहट नहीं मिली। उनकी पुकार सुनकर नौकर नटबिहारी घर से बाहर आ गया। वह उन्हें समझा-बुझाकर मकान के अन्दर ले गया।

दूसरे दिन सबेरे जब वह कमरे में झाड़ लगाने गया तो देखा कि खिड़की के सामने कमरे में पोटली में बँधी हुई कोई चीज पड़ी है। उसको उठाकर उसने भवानीचरण को दिया। भवानी-चरण ने जब उसे खोलकर देखा तो उन्हें वह कोई पुराना दस्तावेज

सा मालूम हुआ । वे चश्मा लगा कर उसे पढ़ने लगे । कुछ पढ़ लेने पर तुरन्त ही रासमणि के पास जाकर उन्होंने उस कागज को खोल कर उनके सामने रख दिया ।

रासमणि ने पूछा—'यह कैसा कागज है ?'

भवानीचरण बोले—'वही वसीयतनामा है ।'

रासमणि ने कहा—'किसने दिया है ?'

भवानीचरण ने कहा—'कल रात्रि को वह आया था । वही दे गया है ।'

रासमणि बोली—'अब इसका क्या होगा ?'

भवानीचरण बोले—'अब मुझे इसकी कोई जरूरत नहीं है ।' कह कर उस दस्तावेज को फाड़ डाला ।

×   ×   ×

जब यह समाचार गाँव में फैल गया, तब बगलाचरण ने सिर हिलाकर गर्व के साथ कहा—'क्या मैंने यह नहीं कहा था कि कालीपद ही वसीयतनामे का उद्धार करेगा ?'

रामचरण ने कहा—'महाराज जी, कल रात्रि को जब दस बजे की गाड़ी स्टेशन पर आई, उस समय एक खूबसूरत बाबू मेरी दूकान के सामने आकर चौधरी जी का मकान पूछने लगा । मैंने उसको रास्ता बतला दिया । मुझे उसके हाथ में कोई चीज़ दिखाई देती थी ।'

बगलाचरण ने इस बात को यह कह कर कि 'यह व्यर्थ की बात है' उड़ा दिया ।

सुभाषिणी

लड़की का नाम सुभाषिणी रखते समय कौन जानता था कि वह गूँगी होगी। उसकी दोनों बड़ी बहिनों का नाम सुकेशिनी और सुहासिनी था। इसलिये छोटी लड़की का नाम भी बड़ी बहिनों के नाम से मेल रखने के लिये सुभाषिणी रख दिया गया। अब उसे सब लोग संक्षेप में सुभा कहते हैं।

दोनों बड़ी लड़कियों की अच्छी प्रकार खोज करके तथा धन व्यय करके शादी हो चुकी है, अब छोटी लड़की माता-पिता पर नीरव हृदय-भार के समान बैठी हुई है। वह बोल नहीं सकती थी, केवल अनुभव कर सकती थी। सभी लोग उसके भविष्य के विषय में उसी के सामने चिन्ता प्रगट करते थे। वह भगवान का अभिशाप लेकर ही माता-पिता के घर आई है—यह बात वह बचपन से ही जानती थी। जिसके परिणाम स्वरूप वह सदैव अपने को अन्य लोगों से छिपाकर रखना चाहती थी। वह सोचती कि लोग मुझे भूल जाँय तो ही अच्छा हो। परन्तु क्या वेदना को भुलाया जा सकता है? वह माता-पिता के मन में सदा जागरूक थी।

उसकी माँ उसे विशेष रूप से अपनी एक त्रुटि के रूप में देखती थी, क्योंकि पुत्र की अपेक्षा कन्या को माता अपने अंश के समान समझती है। उसमें यदि कोई अपूर्णता दिखाई पड़े तो माँ उसे अपनी लज्जा का कारण समझती है। पिता अपनी अन्य

कन्याओं की अपेक्षा सुभा को अधिक स्नेह करते थे। परन्तु माता उसे अपने गर्भ का कलङ्क समझ कर, उसके प्रति विरक्त थी।

सुभा वाणी-हीन थी, परन्तु पल्लवों के समान दो बड़ी-बड़ी काली आँखें उसके थीं तथा उसके अधर भाव के आभाव से ही किसलय की भाँति काँप उठते थे।

जो भाव हम बातचीत में व्यक्त किया करते हैं, वह हम अपनी चेष्टा से भी कर लेते हैं। ऐसा अधिकतर रूपांतर करने की भाँति ही होता है, जो हर समय उचित नहीं ठहरता। उसमें कभी कभी भूल-चूक भी हो जाती है। परंतु काली आँखों को कुछ भी विश्लेषण नहीं करना पड़ता; उन पर मन की छाया स्वयं ही पड़ती है।

उन आँखों में भाव कभी उन पर प्रसारित होता है, कभी मन्द होता है; कभी उज्ज्वल होकर जल उठता है, कभी ग्लानि बन-कर बुझ जाता है; कभी अर्धचंद्र की भाँति अनिमेष देखता रहता है, कभी चंचल बिजली की तरह कौंध उठता है। जिसकी भाषा मुख के भाव के अतिरिक्त प्रारम्भ से ही कोई अन्य नहीं है, उसके नेत्रों की भाषा उदार, स्पर्श, गम्भीर, बहुत ही स्वच्छ आकाश की भाँति उदयास्त तथा छायालोक की शांत रँगभूमि जैसी होती है। इस मूक मनुष्य में प्रकृति की भाँति एक विजन महत्व है। इसी कारण साधारण लड़कियाँ सुभा से डरती थीं। वे उसके साथ खेलती नहीं थीं। वह निर्जन दुपहरी की भाँति शब्द रहित एवं अकेली बनी रहती।

२

चण्डीपुर नाम का एक गाँव है। वहाँ घर की बेटी की भाँति एक छोटी सी नदी भी है। उसका बहाव अधिक दूर तक नहीं है। फिर भी दोनों ओर के तटवर्ती गाँवों से उसका सम्पर्क

कम नहीं है। नदी के दोनों ओर नौकालय हैं तथा वे उसके किनारे के पेड़ों की छाया से घने हैं।

नदी के बिलकुल पास ही सुभा के पिता वाणीकंठ का मकान है। उनके मकान के चारों ओर की दीवारें, गौशाला, आम्र, कटहल तथा केले के गाछ, पुआल का स्तूप आदि नौका विहार करने वालों को रास्ते में दिखाई देते हैं। मैं यह नहीं जानता कि इस गृहस्थी की स्वच्छन्दता में कोई इस गूंगी लड़की के विषय में भी सोचता है या नहीं परतु वह काम-काज से निवृत्त होकर अवसर पाते ही नदी के तट पर जाकर बैठ जाती हैं।

उसकी भाषा का अभाव मानो प्रकृति पूरा कर देती है। मानो वह उसी की होकर बोलती है। नदी का कल-कल स्वर, लोक-कोलाहल, माझियों के गीत, पक्षियों की अर्थहीन भाषा, तरु मरमर—सब मिलकर चारों ओर के वातावरण से एक होकर, उस बालिका के चिरशांत-हृदय में समुद्र की लहरों की भांति आते हैं तथा उसके हृदय रूपी तटों पर वे तरंगें टकरा-टकरा कर टूट जाती हैं। प्रकृति के विचित्र शब्द तथा गति यह सब भी गूंगे की ही भाषा है। सुभा की बड़ी-बड़ी आँखों की भाषा ही यह विश्व-व्यापी विस्तार है, झिल्लीरव पूर्ण तृण भूमि से निशब्द नक्षत्रलोक तक, केवल इंगित, भंगिया, संगीत, क्रन्दन तथा दीर्घ निःश्वास ही तो है।

दोपहर को जलमरुहाह और महुये खाने के लिये जाते; गृहस्थ लोग सोते रहते, नावें चुपचाप खड़ी रहतीं, समस्त जगत सारे काम-काज के बीच यकायक ठहर कर भयानक विजन मूर्ति धारण कर लेता तो रुद्र महाकाश के नीचे केवल एक शांत प्रकृति तथा एक शांत लड़की एक दूसरे के सम्मुख चुपचाप बैठे रहते— एक सुविस्तीर्ण रौद्र में, दूसरी क्षुद्र वृक्षों की छाया के नीचे। सुभाषिणी

के भी कुछ मित्र थे। इनमें सुखती तथा पांगुली नाम की दो गायें थीं। वे दोनों सुभा के मुंह से कभी अपना नाम न सुनकर ही उसके पद-शब्द को पहिचानती थीं—सुभा के कथा-रहित करुण स्वर को भाषा की अपेक्षा अधिक समझती थीं। सुभा कब उनका आदर कर रही है, कब उनसे प्रार्थना कर रही है, कब भर्त्सना कर रही है, इसे वे दोनों मनुष्य से अधिक समझती थीं।

सुभा गौशाला में जाकर अपने दोनों हाथों से सुखती की गर्दन हिलाती तथा उसके कान के पास अपनी कनपटी रखकर घिसती। पांगुली चुपचाप खड़ी उसे स्नेह दृष्टि से देखती तथा उसका शरीर चाटती रहती। सुभा प्रतिदिन नियम से तीन बार गौशाला में जाती। इसके अतिरिक्त भी कई बार जाना हो ही जाता था। यदि किसी दिन घर में कोई कटु बात सुनती तो उस समय वह अपने इन्हीं दोनों मूक-साथियों के पास आ जाती—उसके सहनशीलता परिपूर्ण-विषाद शांत दृष्टिपात से सुखती और पांगुली मानो अनुमान शक्ति के द्वारा ही मर्मवेदना को समझ लेतीं। तब वे और सुभा के समीप आकर, उसकी बाहों पर अपने सींग घिस-कर, शांत-व्याकुलता से धीरज देतीं।

सुभा के मित्रों में इसके अतिरिक्त एक बकरी और बिल्ली का बच्चा भी था, परन्तु उनसे सुभा की इतनी समानता की मित्रता न थी। फिर भी वे सब प्रेम प्रदर्शित करते। बिल्ली का बच्चा सुभा की गर्म गोद में किसी भी समय आकर सुख की नींद लेने के लिये प्रस्तुत हो जाता था तथा यदि सुभा उसकी गर्दन एवं पीठ पर हाथ फेरे तो उसे शीघ्र निद्रा आ जाती है—इशारे से यह बात भी समझा देता था।

३

सुभा का एक और मित्र उच्च श्रेणी के प्राणियों में था।

परन्तु उसका उसके साथ ऐसा सम्पर्क था या नहीं, यह तय करना कठिन है; क्योंकि वह भाषाविशिष्ट प्राणी है, इसलिये दोनों की समान भाषा नहीं थी ।

गुसाईं के छोटे लड़के का नाम प्रताप था । बिलकुल निकम्मा था, उसके माँ-बाप ने यह आशा त्याग दी थी कि वह कभी काम-काज करके परिवार की उन्नति कर सकेगा । निकम्मों की सुविधा यह है कि घर के लोग उनसे दूर जरूर रहते हैं, परन्तु वे लोग निसम्पर्क स्नेह पात्र बन जाते हैं । काम-काज में संलग्न न रहने के कारण वे सरकारी सम्पत्ति के रूप में हो जाते हैं । शहर में जिस प्रकार गृह–सम्पर्क–रहित दो–चार सरकारी बगीचों की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार गाँव में ऐसे दो–चार अकर्मण्य सरकारी लोगों का रहना भी अत्यन्त आवश्यक है । आवश्यकता के समय इन्हें बुलाया जा सकता है ।

प्रताप को मछली पकड़ने का बहुत शौक था । इससे उसका अधिक समय आसानी से कट जाता था । दोपहर के पश्चात् नदी के किनारे उसको इसी काम में व्यस्त देखा जाता था । यहीं अधिकतर सुभा के साथ उसकी भेंट हो जाती थी । वह किसी काम में भी हो, परन्तु एक साथी मिलने में ही प्रसन्न रहता है । मछली पकड़ते समय निर्विघ्नसाथी ही सबसे अधिक उपयुक्त है—इसी कारण प्रताप सुभा की आवश्यकता अनुभव करता था । सभी लोग सुभा को, सुभा कहकर पुकारते थे, परन्तु प्रताप थोड़ा आदर के साथ सुभा को सू कहता था ।

सुभा इमली के वृक्ष के नीचे बैठी रहती तथा प्रताप पानी की ओर देखता हुआ बैठा रहता था । सुभा बीच-बीच में प्रताप को पान देती और बैठी-बैठी सोचती कि वह प्रताप का और कोई काम करे, किसी प्रकार उसे यह समझने वा

अवसर दे कि इस पृथ्वी पर उसका भी कुछ प्रयोजन है, जो कुछ कम नहीं है। परन्तु ऐसा करने के लिये कुछ भी नहीं था।

तब सुभा मन ही मन भगवान से अधिक सहनशीलता प्रदान करने की प्रार्थना करती। कभी-कभी वह मन-रूपी शक्ति से सहसा कुछ ऐसा कार्य कर बैठती कि उसे देखकर प्रताप आश्चर्य में पड़ जाता तथा कहता—'अरे, हमारी सू में इतना क्षमता है, यह तो मुझे ज्ञात ही न था।'

सोचो, यदि सुभा जलकुमारी होती तो वह धीरे २ जल से निकलकर घाट पर साँप की एक मणि रख जाती। प्रताप मछली पकड़ना छोड़कर उस मणि को लेकर पानी में डुबकी लगा लेता तथा पाताल में जाकर देखता—चाँदी के महलों में कौन बैठी है ? हमारी वाणीकण्ठ की गूँगीपुत्री सू—हमारी सू मणि के समान गंभीर, शान्त पातालपुरी की एकमात्र राजकन्या क्या यह सम्भव है ? परन्तु वास्तव में कुछ भी असम्भव नहीं है। फिर भी, सू जनशून्य पाताल के राज्यवंश में उत्पन्न न होकर, वाणीकण्ठ के ही घर में जन्मी है तथा गुसाईं के लड़के प्रताप को वह किसी भाँति भी आश्चर्यचकित नहीं कर पा रही है।

४.

सुभा की अवस्था धीरे-धीरे बढ़ती जा रही है। धीरे-धीरे वह मानो अपने को अनुभव करने लगी है। मान किसी पूर्णिमा के दिन सागर से ज्वार का स्रोत आकर उसकी अन्तर-आत्मा को एक नवीन अनिर्वचनीय चेतनाशक्ति द्वारा पूर्ण कर रहा है। वह अपने को स्वयं ही देख रही है, सोच रही है, अपने से प्रश्न कर रही है, परन्तु समझ नहीं रही है।

एक दिन पूर्णिमा की रात को वह डरते२ द्वार खोलकर

बाहर की ओर देखती रही। पूर्णिमा प्रकृति भी सुभा की भाँति ही अकेली सोये हुये संसार पर जाग कर बैठी है—यौवन के रहस्य में, पुलक में, विषाद में, असीम निर्जनता की स्वच्छ सीमा तक तथा इन्हें अतिक्रम करके भी, वह शान्त है; एक शब्द भी नहीं बोल पा रही है। इस शान्त प्रकृति के प्रान्त पर एक शान्त बालिका खड़ी है। इधर उसको जन्म देने वाले माता-पिता चिन्तित हो उठे हैं। लोगों ने निन्दा आरम्भ कर दी है। यहाँ तक कि उनको जाति से बाहर निकालने की अफ़वाह भी सुनी जा रही है। वाणीकंठ के बहुत से शत्रु भी थे, क्योंकि उनकी अवस्था स्वछन्द थी।

पति–पत्नी ने बहुत विचार किया। अन्त में वाणीकंठ कुछ समय के लिये विदेश चले गये।

कुछ दिनों के बाद लौटकर वे बोले—'चलो कलकत्ते चलो।' जाने की तैयारियाँ होने लगीं।

सुभा का सम्पूर्ण हृदय कोहरे से दबे हुये प्रभात की भाँति आंसुओं से भर गया। वह कुछ दिनों से एक अनिर्दिष्ट आशंका के कारण क्रमागति मूक-जन्तु की भाँति अपने माता-पिता के साथ रहती। वह अपनी बड़ी-बड़ी आँखों से उनके मुँह की ओर देखकर कुछ समझने का प्रयत्न करती, परन्तु वे कुछ भी समझा कर नहीं कहते थे।

एक दिन दोपहर बाद प्रताप मछली पकड़ रहा था। वह सुभा को देखकर हँसकर बोला—'क्योंरी, सुना है तेरा दूल्हा मिल गया है। तू अब विवाह करने जा रही है? देखना हमें मत भुला देना।'

यह कह कर प्रताप पुनः मछली पकड़ने में व्यस्त हो गया।

सुभा ने प्रताप की ओर इस तरह देखा जैसे बिंधे हुए हृदय-वाली हरिणी व्याध की ओर देखकर मूक-भाषा में कहती है—'मैंने

तुम्हारा क्या बिगाड़ा था ?' वह उस दिन इमली के पेड़ के नीचे अधिक देर तक नहीं बैठी। वाणीकंठ सोकर उठे थे। वे कमरे में बैठकर हुक्का पी रहे थे। सुभा उनके पैरों के पास आकर बैठ गई तथा उनके मुँह की ओर देखकर रोने लगी। वाणीकंठ की आंखों में भी उसे सान्त्वना देते समय आँसू आ गये।

कल कलकत्ते जाने का दिन निश्चित हुआ है। सुभा गौ-शाला में अपनी बालसखियों से विदा लेने गई। उन्हें अपने हाथों से खिलाया, उनका गला पकड़ कर दोनों आंखों से उनका मुँह देखने लगी। धीरे-धीरे सुभा की आँखों से फिर आँसू की बूंदें गिरने लगीं।

उस दिन शुक्ल पक्ष की द्वादशी की रात्रि थी। सुभा शयना-गार से निकल कर अपनी चिर-परिचिता नदी तट की हरी-भरी शैया पर रोने लगी—मानो वह धरती को, इस मूक मानवता को सुनाकर कुछ कहना चाहती हो—मां, तुम मुझको मत जाने दो। तुम अपनी दोनों भुजायें बढ़ाकर मुझे रोक लो।

कलकत्ते में एक दिन सुभा की माँ ने सुभा को अच्छी प्रकार सुला दिया। अच्छी तरह उसकी वेणी गूँथी, बालों में जाली का फीता लगाया। अच्छे-अच्छे गहने पहना कर उसके स्वाभाविक सौन्दर्य को बिलकुल नष्ट कर दिया। सुभा के दोनों नेत्रों से अश्रुधारा बह रही थी, उसकी माँ उसको घुड़क रही थी कि कहीं आंख सूज जाने पर वह अच्छी न लगे, परन्तु अश्रुधारा रोके से नहीं रुकती थी।

दूल्हा स्वयं अपने बन्धुओं के साथ कन्या को देखने आये हैं—कन्या के माँ-बाप चिन्तित हैं, मानो देवता स्वयं अपने बलिदान का पशु पसन्द करने आये हों। माँ ने इशारों से सुभा को डरा-धमका कर, समझा-बुझाकर परीक्षक के सामने भेज दिया। सुभा की आँखों से निरन्तर अश्रुधारा बह रही थी। बहुत देर देखने के पश्चात् परीक्षक बोले—'ठीक है।'

बालिका का करुण-क्रन्दन देखकर परीक्षक ने यह समझा—इसके हृदय है तथा यह सोचा कि जो हृदय आज माँ-बाप से विलग होने की सम्भावना से व्यथित हो उठा है, वही कुछ दिनों बाद मेरे व्यवहार में आ जावेगा। शुक्त-मुक्ता की भाँति सुभा के अश्रुजल ने केवल उसके मूल्य में ही वृद्धि की, उसकी ओर से वे कुछ नहीं बोले।'

शुभ लग्न में विवाह हो गया। माँ-बाप गूँगी लड़की को दूसरों के हाथों में सौंपकर गाँव लौट गये–इस प्रकार उसकी जाति तथा परलोक की रक्षा हुई। वर पश्चिम में काम करता है, इसलिये विवाह के पश्चात् ही वह स्त्री को लेकर पश्चिम चला गया। एक सप्ताह के अन्दर ही सबने समझ लिया कि नववधू गूँगी है। परन्तु यह किसी ने नहीं सोचा कि यह उसका दोष नहीं है। उसने किसी को धोखा नहीं दिया। उसकी आंखों ने सारी बातें पहिले ही बता दी थीं। परन्तु तब कोई नहीं समझ पाया था। वह चारों तरफ देखती, उसके पास कुछ कहने के लिये भाषा नहीं थी–जो लोग उसके मौन की भाषा समझते थे, उन आजन्म परिचितों का मुँह अब उसे दिखाई नहीं देता था। बालिका के नीरव-हृदय में एक मूक-क्रन्दन हो रहा था, केवल अन्तरात्मा के अतिरिक्त और कोई नहीं समझता था।

इस बार उसके पति ने भली भांति देखभाल कर एक भाषा विशिष्ट लड़की से विवाह किया।

अतिथि

१

कटहलिया के जमींदार मोतीलाल बाबू अपनी नाव में सपरिवार कलकत्ता से देश जा रहे थे। मार्ग में दोपहर को एक जंगल के पास नाव रुकवाकर भोजन की व्यवस्था करवा रहे थे कि एक ब्राह्मण बालक ने आकर पूछा—'आप लोग कहाँ पर जा रहे हैं, बाबू साहब ?'—उसकी अवस्था पन्द्रह-सोलह साल से अधिक न होगी।

मोतीलाल बाबू ने उत्तर दिया—'कटहलिया।'

लड़का बोला—'मुझे रास्ते में नन्दी गाँव उतार दीजियेगा ?'

मोतीलाल बाबू ने सम्मति देते हुए पूछा—'तुम्हारा क्या नाम है ?' लड़के ने उत्तर दिया—'ताराचन्द।'

लड़का देखने में सुन्दर तथा गौरवपूर्ण था। बड़े-बड़े नेत्रों एवं हँसी भरे अधरों से एक प्रकार की सुललित सुकुमारता प्रकट हो रही थी। शरीर पर एक मैली धोती के सिवाय और कोई कपड़ा न था। उसका उभड़ा हुआ शरीर सब प्रकार के विकार से वर्जित था, मानो उसे किसी कलाकार ने बड़े परिश्रम से सुन्दर सुडौल एवं निर्दोष बनाकर रचा हो। मानो वह पूर्व जन्म में तापस बालक था तथा अब उस निर्मल-तपस्या के प्रभाव से उसके शरीर

से, शरीर का बहुत सा अंश नष्ट होकर उसमें एक प्रकार की समार्जित ब्राह्मण्य श्री परिपुष्ट हो उठी हो।

मोतीलाल बाबू अत्यन्त विनम्र एवं स्नेह भरे स्वर में बोले—बेटा, अब तुम नहालो। नहाने के पश्चात् यहीं खाना खाना।'

ताराचन्द ने कहा—'अच्छा।' फिर वह उसी क्षण निःसंकोच भाव से रसोई के काम में लग गया। मोतीलाल बाबू का नौकर पश्चिम का था। वह मछली आदि बनाने में इतना निपुण न था। ताराचन्द ने चटपट उसका काम अपने हाथ में लेकर पूरा कर डाला तथा एक-दो तरकारी भी अपनी निपूणता से बना डालीं। रसोई का काम समाप्त करके वह नदी में नहा आया, और अपनी पोटली से एक साफ धोती निकाल कर पहन ली। एक छोटा सा लकड़ी का कंघा निकाल कर, उससे अपने लम्बे-लम्बे बालों को सम्हाल कर आगे से पीछे की ओर कर लिया। इसके पश्चात् स्वच्छ एवं पवित्र जनेऊ को ठीक से छाती पर से लटका कर, मोतीलाल बाबू के पास आ खड़ा हुआ।

मोतीलाल बाबू उसे अपने साथ नाव के अन्दर ले गये। वहाँ पर उनकी स्त्री तथा उनकी एक नौ साल की बच्ची बैठी हुई थी। मोती बाबू की स्त्री अन्नपूर्णा उस सुन्दर बालक को देखते ही स्नेह से पुलकित हो मन ही मन बोली—'न जाने किसका बच्चा है, कहाँ से आया है। इसकी माँ इसे छोड़कर किस प्रकार जीवित है?'

ठीक समय पर मोती बाबू एवं उस लड़के के लिये पास-पास आसन और पट्टे बिछाये गये। लड़का अधिक भोजन नहीं करता था। उसका अल्पाहार देखकर अन्नपूर्णा सोचने लगी—'शायद संकोच से नहीं खा रहा है। इसलिये उन्होंने उससे खाने के लिये बहुत अनुरोध किया, परन्तु जब वह खाना समाप्त कर चुका तो फिर उसने एक भी अनुरोध नहीं माना। देखा गया कि लड़का सब काम

अपनी इच्छानुसार ही करता है तथा ऐसे सहज स्वभाव से करता है कि उससे किसी प्रकार की ज़िद या बेअदबी प्रकट नहीं होती। उसके व्यवहार में लज्जा का भी कोई लक्षण देखने को नहीं मिला।

अन्नपूर्णा ने सब के खा-पी चुकने के पश्चात् उसे अपने पास बैठा लिया। फिर वे उससे उसके जीवन का इतिहास पूछने लगी। परन्तु उससे इस कार्य में कुछ भी सुराग प्राप्त न हो सका। केवल इतना ही पता चल सका कि वह सात आठ साल की उम्र में ही अपनी इच्छा से घर छोड़कर चला आया है।

अन्नपूर्णा ने पूछा—'तुम्हारे माता-पिता कहीं हैं ?' ताराचन्द ने कहा—हैं।'

अन्नपूर्णा ने पूछा—'वे तुम्हें प्यार नहीं करते !'

ताराचन्द इस प्रश्न को व्यर्थ समझ कर हँस दिया। बोला-'क्यों, प्यार क्यों नहीं करेंगे ?'

अन्नपूर्णा ने पूछा—'तो फिर तुम इस प्रकार उन्हें छोड़ कर क्यों चले आये ?'

ताराचन्द ने उत्तर दिया—'उनके घर में मेरे अलावा और भी चार लड़के तथा तीन लड़कियां हैं।'

अन्नपूर्णा ताराचन्द के इस उत्तर से व्यथित होकर बोली—'यह कैसी बात ? पांच उंगलियों में एक उंगली को कोई अलग कर सकता है ?'

ताराचन्द की अवस्था कम है तथा उसकी कहानी भी छोटी सी है, परन्तु वह अद्भुत लड़का है। वह अपने मां-बाप का चौथा पुत्र है। उसके पिता बचपन में ही उसे छोड़कर गुजर गये थे। घर में अनेक सन्तान होने पर भी ताराचन्द का सम्मान था तथा सब उसे बहुत लाड़ प्यार भी करते थे। मुहल्ले के लोग तथा भाई-बहिन भी उससे स्नेह करते थे। यहाँ तक कि स्कूल के अध्या-

पक भी उसे नहीं पीटते थे, यदि कभी पीट भी देते तो वह उसके घर वालों एवं गाँव वालों को असह्य होता था। ऐसी दशा में भी उसके लिये घर छोड़ने का कोई विशेष कारण नहीं था। अब जो लड़का हमेशा चोरी से पेड़ों के फल और गृहस्थियों में उसका चौगुना खाता फिरता है, कभी वह अपने जाने पहिचाने क़स्बे की सीमा के अन्दर अपनी परेशान करने वाली माता के नजदीक भी पड़ा है—पूरे गाँव का स्नेही लड़का एक दूसरे देश की नाटक मंडली के साथ होकर बिना किसी डर के गाँव छोड़कर चला आया !

गाँव के आदमी उसे खोज खोज कर फिर उसी गांव में ले गये। माता ने उसे अपनी छाती से लगाये हुये रो-रो कर आँसुओं से गीला कर दिया, उसकी बहिन बहुत देर तक रोती रही, और बड़े भाई ने पुरुष-अविभावक के कठोर कर्तव्य का पालन करके उसे मीठी-मीठी फटकार देकर आखिर में अत्यन्त प्रसन्न-चित्त से इनाम दिया। मोहल्ले की नारियों ने उसे अपने मकान पर बुला कर, बहुत प्यार एवं अनेक भाँति के प्रलोभन दिखाकर, अपने ही गाँव में रहने के लिये अनुरोध किया। किन्तु बन्धन ही नहीं प्रेम एवं स्नेह का बन्धन भी उसे सहन न हो सका। जन्म-नक्षत्र ने तो उसको घर से अलग ही कर दिया। जब कभी भी वह देखता कि नहर में कोई यात्री-नौका जा रही है, या बूढ़े बरगद के वृक्ष के नीचे दूर देश के साधु-महाराज टिके हुए हैं या बञ्जारे नहर के समीप वाले खुले मैदान में छोटी-छोटी लकड़ियों को छील कर टोकनियाँ बना रहे हैं, उसी समय किसी अनहोनी प्रेरणा के वशीभूत होकर पृथ्वी की स्नेह हीन स्वतन्त्रता के वास्ते उसका हृदय रोने लगता। दो-तीन बार गाँव से बाहर भागने के पश्चात् भी वह पुनः चौथी बार भागने को निकल पड़ा। तब उसके घर वाले ही

नहीं गाँव वाले भी, उसके गाँव में रहने की आशा त्याग कर, चुप-चाप बैठ गये। उसने जिस नाटक मंडली का साथ किया था, उसके अध्यक्ष तक उससे लड़के के समान प्यार करने लगे तथा मंडली के बड़े तथा छोटे सभी का वह स्नेही हो उठा। जब कभी किसी भी स्थान पर कोई खेल होता तो उस मकान के मालिक एवं विशेषकर मालकिनें उसे विशेष रूप से अपने नजदीक बुलाकर उसकी खातिर करने लगते। परन्तु वह चुपचाप ही एक दिन किसी से बिना कुछ कहे सुने ही गायब हो गया। किसी को मालूम तक न हुआ।

ताराचन्द हिरणी के बच्चे के सदृश्य संगीत का प्रेमी तथा बन्धनभीरू हिरण के समान ही है। नाटक के गीतों ने उसे घर से अलग रहने वाला बना दिया था। गीतों की आवाज ने उसकी समस्त नसों में अनुकम्पन एवं ताल से उसके सम्पूर्ण शरीर में आन्दोलन जारी कर दिया था। जब वह छोटा बच्चा था, तब उसे संगीत-सभा में युवकों की भाँति संयम तथा गंभीरता पूर्वक झूमते देखकर हँसी नहीं रुकती थी। केवल संगीत ही नहीं बल्कि वृक्षों के पत्तों पर जब वर्षा होती, नभ में जब बादल गरजने लगते एवं जंगल में मातृहीन दैत्य-शिशु की भाँति वायु जब रुकती रहती तब भी उसका मन उच्छृङ्खल हो उठता। दोपहरी में दूर नभ में चीलों का चीखना, वर्षा की शाम को मेढ़कों का टर्राना तथा अँधेरी रात्रि को भेड़ियों का शोर मचाना यह सभी बातें उसे चंचल बना देतीं। वह इसी संगीत के मोह से आकृष्ट होकर एक संगीत मंडली में सम्मिलित हो गया था। दल के स्वामी ने उसे बड़ी मेहनत से गाना सिखाया था, तथा अपने हृदय पिञ्जर की चिड़िया की भाँति उससे प्रेम भी करने लगा था। पक्षी ने कुछ-कुछ गाना सीखा भी परन्तु एक दिन सबेरा होते ही वह उड़कर चला गया।

अन्तिम बार वह एक नटों की मंडली में सम्मिलित हुआ।

जेठ से लेकर आषाढ़ के अन्त तक इस प्रान्त में मेले लगा करते हैं। उस समय नाटक, यात्रा, गान, लोक गीत, नटों का खेल, नर्तकियों के नृत्य आदि नाना प्रकार के खेल हुआ करते हैं। यह खेल दिखाने वाले नावों में इधर से उधर आते जाते हैं। पिछली साल इसी प्रकार एक नाव में नटों का एक दल भ्रमण कर रहा था, जिसके साथ ताराचन्द भी था।

उसका इस दल को छोड़कर भागना अन्तिम था। जब उसने सुना कि नन्दी गाँव के जमींदार एक अच्छी नाटक मंडली का संगठन कर रहे हैं तो वह झट अपनी पोटली बाँध कर नन्दीग्राम जाने को तैयार हो गया तथा नाव की प्रतीक्षा में नदी के किनारे घूमने लगा। इसी समय उसकी भेंट मोती बाबू से हो गई।

ताराचन्द क्रमानुसार अनेक मंडलियों में सम्मिलित होने पर भी, स्वभावानुसार कल्पनाशील प्रकृति के प्रमाद से किसी भी एक मंडली की प्रधानता प्राप्त न कर सका। वह मन में सम्पूर्णतया निर्लिप्त एवं मुक्त था। उसने दुनियाँ की बहुत सी बुरी बातें सुनीं एवं बहुत से बुरे-बुरे दृश्य भी देखे थे, परन्तु वे उसके हृदय में क्षण भर के लिये भी स्थान न पा सके। उसके मन को अन्य बन्धनों की भाँति किसी प्रकार की आदत का बन्धन भी काबू में न कर सका। वास्तव में वह इस संसार के पंकित-जल में सदैव शुभ्र पंख राजहंस की भाँति तैरता रहा है। जब-जब उसने डुबकी लगाई तब-तब उसके पंख न तो भीगे ही और न मैले हुए। इसलिये घर त्याग करने वाले इस बालक के चेहरे पर हमेशा एक प्रकार का शुभ्र वास्तविक तारुण्यमय अम्लान रूप बना ही रहा। यही कारण है कि उसकी उस तरुण मुखाकृति को देख कर बुद्धिमान मोती बाबू भी मोहित हो गये तथा बिना किसी सन्देह के उन्होंने उसे अपना लिया।

२

भोजन समाप्त हो जाने के पश्चात् नाव पुनः खोल दी गई। अन्नपूर्णा उस ब्राह्मण बालक से बड़े स्नेहपूर्वक उसके घर एवं परिवार के लोगों की बातें पूछने लगीं। ताराचन्द ने उनकी सब बातों का संक्षेप में उत्तर देकर बाहर आकर छुटकारा पाया। बाहर बरसाती नदी पूरी तरह भरी हुई थी। इस प्रकार उसने अपनी चंचलता से प्रकृति माता को उद्विग्न कर रक्खा था। नदी के किनारे कभी आधी डूबती हुई काशतृण श्रेणी, मेघयुक्त धूप से तथा उसके ऊपर ईख के घने खेत, और उससे भी ऊपर दूर-दूर तक चुम्बन करने वाली नीले रंग की वन रेखा मानो किसी एक रूप-कथा की जादू की लकड़ी के स्पर्श से जागृत सौन्दर्य के सदृश शान्त नील आकाश की मुग्ध दृष्टि के सम्मुख स्फुट हो उठी थी। चारों ओर का दृश्य मानो सजीव, स्पन्दित, प्रथम आलोक से उद्भाषित, नवीनता से सुचिक्कण एवं प्राचुर्य से पूरी तरह भर उठा है।

नाव की छत पर पाल की छाया के नीचे ताराचन्द आकर बैठ गया। हरे भरे ढालू मैदान पाट के पानी से भरे हुए थे। धान के हरे-भरे खेत, घाट से गांव की ओर जाने वाले संकीर्ण रास्ते एवं छायादार घने वृक्षों से घिरे हुए गांव, बारी-बारी से उसके नेत्रों में आ आकर बसने लगे। जल थल तथा आकाश के चारों ओर की सजीवता एवं मुखरता, ऊपर तथा नीचे की व्याप्ति एवं निर्लब्ध सुदूरता, विराट एवं चिर-स्थाई अपलक वाक्य-विहीन संसार-उस तरुण बालक के परम आत्मीय थे। इतने पर भी वे इस चञ्चल मानव सन्तान को क्षण भर के लिये भी अपने प्रेमपाश में बाँधने का प्रयत्न नहीं करते थे। नदी के तट पर एक बछड़ा अपनी पूँछ उठाये दौड़ रहा है। गाँव का एक टट्टू जिसके पैर

बँधे हुए हैं—उछल-उछल कर घास खा रहा है। जल-मुर्गी मछुओं की जाल वाली खूँटी से पानी में कूद कर, मछली पकड़ने का प्रयत्न कर रही है। गांव के लड़के पानी में अनेक प्रकार से ऊधम मचा रहे हैं। स्त्रियाँ कमर तक जल में स्नान करती हुई, परस्पर हँस हँस कर बातें कर रही हैं—इन सब दृश्यों को वह चिर नवीन एवं अपरिमित कौतूहलपूर्वक बैठा हुआ देख रहा है, उसके नेत्रों की प्यास किसी भी प्रकार नहीं मिट पा रही है।

इसके पश्चात् उसने धीरे-धीरे माँझी के साथ गप्पें लड़ाना आरंभ कर दिया बीच-बीच में जब कभी आवश्यकता होती, तब वह मल्लाहों के हाथों से लग्गी लेकर ठेलना आरम्भ कर देता। जिस समय माँझी को तम्बाकू पीने की आवश्यकता प्रतीत होती, उस समय वह जाकर डांड़ थाम लेता और जब जिस ओर घुमाना चाहिये, उसे दक्षता पूर्वक घुमाने लगता।

सायंकाल होने से पूर्व अन्नपूर्णा ने ताराचन्द को बुलाकर कहा—'तुम रात के समय क्या खाते हो?'

ताराचन्द बोला—'जो मिल जाता है, उसी को खा लेता हूँ। यदि किसी दिन नहीं भी मिलता है, तो यों ही रह जाता हूँ।'

इस सुन्दर ब्राह्मण बालक की ओर से आतिथ्य ग्रहण करने की इस उदासीनता को देखकर अन्नपूर्णा को मन ही मन कुछ कष्ट हुआ। उनकी बड़ी अभिलाषा थी कि वे इस घर से निकले हुए बालक को कुछ खिला-पिलाकर तृप्त कर दें। परन्तु वह किस प्रकार सन्तुष्ट होगा, यह बात समझ में ही नहीं आती थी। नाव को किनारे लगवाकर अन्नपूर्णा ने नौकर द्वारा गाँव से दूध, दही तथा मीठा मगवाने की धूम मचा दी। ताराचन्द ने पेट भर कर भोजन किया, परन्तु दूध से हाथ भी नहीं लगाया। मौन-स्वभावी मोती बाबू ने भी उससे दूध पी लेने का आग्रह किया, परन्तु उसे

यह निवेदन स्वीकार नहीं हुआ और कहने लगा—'दूध मुझे अच्छा नहीं लगता है।'

इसी प्रकार दो-तीन दिन बीत गये। रसोई बनाने से लेकर नाव चलाने तक के सभी कार्यों में ताराचन्द स्वेच्छा एवं तत्परता के साथ भाग लेता रहा। उसकी आँखों के सामने जो भी दृश्य आता, उसकी आश्चर्यपूर्ण दृष्टि तुरन्त दौड़ जाती तथा उसके सम्मुख जो भी कार्य दिखाई पड़ता, उसे वह अत्यन्त दिलचस्पी के साथ करने लगता था। उसकी दृष्टि, उसका मन तथा उसके हाथ-पाँव हर समय चलते ही रहते हैं। वह नित्य चलायमान प्रकृति की भाँति सदैव निश्चिन्त उदासीन एवं साथ ही साथ क्रियाशील बना रहता। मनुष्य मात्र की अपनी स्वतन्त्र विचार भूमि होती है, परंतु इस नीलाम्बरवाही विश्वप्रवाह की एक आनन्दमयी तरंग की भांति ताराचंद का मानो भूत भविष्य के साथ किसी प्रकार का कोई सम्बंध नहीं है। अपने सामने की ओर चलते जाना ही उसका एक मात्र कार्य है।

उसने इधर बहुत दिनों तक अनेकों सम्प्रदायों में घुल-मिल कर अनेक प्रकार की मनोरंजनी विद्यायें प्राप्त कर ली थीं। चिंता-हीन होने के कारण उसके निर्मल स्मृति-पटल पर सभी बातें आश्चर्यजनक सरलता के साथ अंकित हो जाती थीं। पांचाली गीत कथायें, कीर्तन, गान, यात्रा तथा नाटक के लम्बे-लम्बे कथोपकथन उसे कंठस्थ हो गये। एक दिन सायंकाल मोतीलाल बाबू सदैव की भांति अपनी पत्नी तथा पुत्री को रामायण पढ़कर सुना रहे थे। अभी लव और कुश की कथा आरंभ हुई थी कि ताराचंद अपने उत्साहपूर्ण आवेग को किसी प्रकार नहीं रोक सका। वह नाव की छत से उतर कर भीतर आकर बोला—'आप पुस्तक खोल लीजिये, मैं लव कुश का गीत गाता हूं। आप लोग उसे सुनिये।' इतना कह

कर उसने पांचाली गाना आरंभ कर दिया। बाँसुरी से मीठे एवं परिपूर्ण स्वर में वह दासराय के अनुप्रासों की शीघ्रतापूर्वक वर्षा करने लगा। सब मांझी दरवाजे के पास आकर झुक गये। उस सन्ध्याकाश में नदी तट पर हास्य करुणा एवं संगीत का एक अपूर्व रस स्रोत प्रवाहित हो उठा। दोनों ओर की तटभूमि कौतूहल से भर गई। बगल से दो नाव जा रही थीं, उसके यात्री क्षण भर के लिये उतकंठित होकर, इसी ओर कान लगाये रहे और जिस समय वह गीत समाप्त हुआ तो सब लोग व्यथित-हृदय से दीर्घ सांस लेकर विचार करने लगे—'ओह, यह इतनी शीघ्र समाप्त हो गया ?'

अन्नपूर्णा के नेत्र सजल हो उठे थे। उनकी इच्छा होने लगी कि वे बच्चे को अपनी गोद में बैठाकर तथा हृदय से लगाकर खूब प्यार करें। मोतीलाल बाबू विचार करने लगे—'यदि किसी प्रकार मैं इस बालक को अपने पास रख सकूँ तो पुत्र का अभाव दूर हो जाय।' केवल नन्हीं बालिका चारुशशि के मन में ही ईर्ष्या एवं विद्वेष की उत्पत्ति हुई।

३

चारुशशि अपने माता-पिता की एक मात्र संतान तथा उनके स्नेह की एकमात्र अधिकारिणी थी। उसकी अभिलाषा और जिद का अंत नहीं था। खाने, पीने, पहनने, ओढ़ने तथा केश-विन्यास के सम्बंध में उसका स्वतंत्र मत था। परंतु उसका कोई भी मत निश्चित नहीं था जिस दिन उसको कहीं निमंत्रण में जाना होता उस दिन उसकी माता को बराबर यही भय बना रहता कि न जाने लड़की आज वस्त्र आदि के सम्बंध में कौन सी जिद पकड़ बैठे। यदि दैववश किसी प्रकार उसके मन जैसे बाल नहीं बंधे तो फिर उस दिन उन्हें चाहे जितनी बार खोल कर और प्रकारों से क्यों न

बांध जावे, उसे पसंद ही नहीं आते थे। जब चाहती, तब वह रोना भी आरंभ कर देती थी। सभी बातों में उसका यही हाल था। जब कभी उसका मन प्रसन्न होता, तब उसे किसी बात को मानने में किसी प्रकार की आपत्ति नहीं होती थी। उस समय वह अपनी माँ से लिपट कर बहुत अधिक मात्रा में प्यार प्रदर्शित करती हुई हँसकर बातें करती और उन्हें बहुत परेशान कर डालती थी। वास्तव में यह छोटी सी लड़की एक कठिन पहेली की भाँति थी।

यह लड़की अपने बन्धन-रहित हृदय के सम्पूर्ण वेग का प्रयोग करके मन ही मन ताराचंद को कोसने और मारने लगी। उसने माता-पिता को भी हर प्रकार से परेशान कर डाला। घर की नौकरानियों को मारने लगी। खाते समय रूठकर थाली फेंक देती। सभी बातों में बेमतलब शिकायत कर उठी। ताराचंद की विद्यायें अन्य जब लोगों का जितना मनोरंजन करतीं, उतना ही अधिक उसका गुस्सा बढ़ने लगता। चारुशशि को यह मानना उचित नहीं लगता था कि ताराचंद में कोई गुण है। ज्यों-ज्यों ताराचंद के गुणों का प्रमाण मिलता गया, त्यों-त्यों उसके मन का असंतोष भी बढ़ता चला गया। जिस दिन ताराचंद ने लव कुश का गीत गाया था उस दिन अन्नपूर्णा ने अपने मन में यह विचार किया था कि संगीत में वन के पशुओं को भी वश में कर लेने की शक्ति होती है, उसे सुनकर शायद आज मेरी लड़की का मन भी द्रवित हो गया होगा। यही विचार कर उन्होंने चारुशशि से पूछा—'क्यों बिटिया! तुम्हें यह गाना कैसा लगा?' उनकी बात सुनकर चारु ने कोई स्पष्ट उत्तर न देकर जोर से अपना सिर हिला दिया। यदि उसके सिर हिलाने का भाषा में अनुवाद किया जाये तो निश्चित रूप से उससे यही मालूम होगा कि उसे वह संगीत न तो तनिक भी अच्छा लगा और न कभी लग ही सकता है।

अन्नपूर्णा इस बात को समझ गई कि चारुशशि के मन में ताराचन्द के प्रति ईर्ष्या उत्पन्न हो गई है। अतः उन्होंने उसके सामने ताराचंद के प्रति प्रेम प्रदर्शित करना त्याग दिया। रात्रि होते ही जब चारुशशि खा-पीकर शीघ्र सो जाती, तब अन्नपूर्णा दरवाजे के पास आकर बैठ जातीं और मोतीबाबू तथा ताराचंद वाहर बैठ जाते। उस समय अन्नपूर्णा के अनुरोध से ताराचन्द अपना गायन आरम्भ करता। जिस समय उसके गीत से नदी तट की विश्रामश्री सन्ध्या के घने अंधकार में मुग्ध तथा निस्तब्ध बन जाती एवं अन्नपूर्णा का कोमल हृदय स्नेह तथा सौन्दर्य से अभिभूत हो उठता; उसी समय चारुशशि अचानक ही अपने बिस्तर से उठकर शीघ्रता पूर्वक वहाँ आ धमकती तथा अत्यंत क्रोध में भरकर इस प्रकार कहती—इस हो हल्ला के कारण मेरी नींद उचट जाती है। तुम मुझे सोने भी दोगे या नहीं ?' उसके माता-पिता उसे अकेली सुलाकर स्वयं ताराचन्द को वालिका की स्वाभाविक तीव्रता तराचन्द को अत्यन्त आश्चर्यजनक लगती। वह चारुशशि को कहानी सुनाकर, गीत गाकर एवं बाँसुरी बजाकर अनेक प्रकार से वश में करने का प्रयत्न करने लगा। परंतु उसे किसी भी प्रकार सफलता नहीं मिली। केवल दोपहर के समय नदी में नहाते समय ताराचंद का गौर शरीर जब परिपूर्ण जलराशि में अत्यंत सरलता पूर्वक संचालित होता रहता, उस समय चारु को ऐसा प्रतीत होता मानो कोई तरुण जल देवता क्रीड़ा कर रहा हो; और केवल यही समय ऐसा होता, जब उसका मन ताराचंद की ओर आकर्षित हुए बिना नहीं रहता। वह इस समय की प्रतीक्षा बराबर करती रहती थी। परंतु अपनी इस मनोभावना को किसी के सम्मुख प्रगट नहीं होने देती थी। जिस समय ताराचन्द नदी में कूद कर तैरने लगता; उस समय वह एकाग्रचित्त से ऊनी गुलूबन्द बुनते-बुनते मानो,

बीच-बीच में अत्यन्त उपेक्षापूर्वक उसका तैरना कनखियों से देखा करती थी ।

४.

नन्दीग्राम किस समय निकल गया, ताराचन्द को इसका पता ही नहीं चला । वह बड़ी नाव कभी पाल तान कर और कभी रस्से से खींचकर मृदुमन्द गति में अनेकों नदियों की शाखा-प्रशाखाओं में होकर चलने लगी । नाव के यात्रियों के दिन भी इन नदी उपनदी के समान ही हैं, जो शान्त सौंदर्य एवं वैचित्र्य में से सहज सम्यक् गति द्वारा मधुर कल-कल स्वर में प्रवाहित हो रहे हैं और जिसमें किसी प्रकार की शीघ्रता अपेक्षित नहीं है । दोपहर को स्नान करने और खाना खाने में काफी समय बीत जाता था । फिर संध्या होने के पूर्व ही किसी बड़े गाँव अथवा घाट के किनारे झींगुर झंकरित तथा खद्योतों से परिपूर्ण जंगल के समीप नाव को बाँध दिया जाता था ।

इस प्रकार दसवें दिन नाव कटहलिया जा पहुँची । जमींदार के आगमन का समाचार पाकर उनके घर से पालकी तथा घोड़ों का आगमन हुआ । लाठी, बन्दूकधारी सिपाही तथा प्यादों ने आकर बारम्बार बन्दूक की आवाजें करके गाँव के काक-समाज को आवश्यकता से अधिक मुखर कर दिया ।

इस सब समारोह में जितनी देर होने को थी, उसके बीच के समय में ताराचन्द नाव से उतर कर एकबार शीघ्रतापूर्वक सारे गाँव में भ्रमण कर आया । दो-तीन घण्टे के भीतर ही उसने किसी को भाई साहब, किसी को चाचा, किसी को जीजी और किसी को मौसी कहकर गाँव भर से मेल कर लिया । उसके लिये कहीं भी कोई बन्धन न था, इसीलिए वह इतनी शीघ्रतापूर्वक सबसे

परिचय कर लेता। देखते-देखते कुछ ही दिनों में उस गाँव में अधिकांश लोगों के हृदय में उसने अपना अधिकार स्थापित कर लिया।

इतनी सरलता पूर्वक सबका हृदय जीतने का कारण यह था कि ताराचंद सभी के साथ समान रूप में सम्मिलित हो जाता था। वह किसी भी प्रकार के विशेष संस्कारों में बंधा हुआ न था। सभी अवस्था में, सभी कार्यों के प्रति उसमें एक प्रकार का स्वाभाविक झुकाव था। बालकों में वह सम्पूर्णतया स्वाभाविक बालक था, परन्तु उनसे श्रेष्ठ एवं स्वतंत्र; वृद्धों में यदि बड़ा-बूढ़ा नहीं तो निरा बालक भी न था। चरवाहों के साथ वह चरवाहा था, परन्तु उसका ब्राह्मणत्व उससे प्रथक नहीं हो जाता था। वह सबके सब कार्यों में चिरकाल के सहयोगी की भाँति, अभ्यस्त रूप में हस्तक्षेप कर सकता था। जब वह हलवाई की दूकान में गप्पें लड़ाने बैठ जाता, उस समय हलवाई उससे यह कह कर अपना कार्य पूरा करने के लिये निस्संकोच चला जाता था—"पंडित भाई, तुम जरा यहीं बैठे रहना। मैं अभी आता हूँ।" जब वह चला जाता तो चन्दू दूकान पर बैठा हुआ, बड़े मजे से पत्तलों के सहारे मक्खियाँ उड़ाया करता था। मिठाई बनाने में वह बहुत होशियार है। बुनाई के काम में अनभिज्ञ नहीं है और कुम्हार का चाक चलाने में भी वह अनाड़ी नहीं है। ताराचंद ने सम्पूर्ण गांव को अपने वश में कर लिया, परन्तु गांव की एक बालिका की ईर्ष्या पर वह अभी तक विजय प्राप्त नहीं कर सका। सम्भवतः यह जानकर ही कि वह बालिका उसे गाँव से बहुत दूर निकाल देने की इच्छा रखती है, वह इतने दिनों तक इस गाँव में टिका रहा परन्तु चारुशशि ने इस बात का श्रेष्ठतम प्रमाण उसके सम्मुख उपस्थित कर दिया कि नारी के मन का रहस्य, उसकी बाल्यावस्था में भी भेद नकरना अत्यन्त कठिन होता है।

मिश्रानी की लड़की सोनामणि पांच वर्ष की आयु में विधवा हुई थी। वह चारु की समवयस्क एवं सखी है। तबियत ठीक न होने के कारण वह कलकत्ते से आई हुई अपनी सहेली से कुछ दिन नहीं मिल सकी थी। जिस दिन वह स्वस्थ होकर मिलने के लिये आई, उस दिन बिना किसी कारण के ही उन दोनों सखियों में कुछ मन मुटाव-सा हो गया।

चारुशशि ने एक बड़ी भूमिका बाँधकर कहानी का आरम्भ किया उसने विचारा था कि वह ताराचंद नामक बाल-रत्न की अपहरण कथा को विस्तारपूर्वक सुनाकर अपनी सखी के कौतूहल तथा विस्मय कोसदाम समम में चढ़ा देगी। परन्तु जब उसे यह ज्ञात हुआ कि ताराचन्द सोनामणि से अपरचित नहीं है और वह उसकी माता से मौसी कहता है, एवं सोमामणि उसे भैया कहकर पुकारती है तथा यह कि ताराचन्द ने सोनामणि तथा उसकी माँ को केवल एक बार ही बाँसुरी बजाकर नहीं सुनाई, बल्कि उसने अनुरोध से उसके लिये भी अपने हाथ से एक बाँसुरी बना कर दी है तथा कितनी ही बार ऊँची डाली पर से फल तथा कांटे वाली टहनी से फूल तोड़कर भी दिये हैं तो उस समय चारुशशि के अन्तःकरण में एक दबा हुआ शूल सा भिद गया। चारु यह समझती थी कि ताराचंद केवल उन्हीं लोगों का ताराचन्द है। वह अत्यन्त गुप्त रूप से उसकी संरक्षिका है। बाहर वाले उसका थोड़ा बहुत आभास भले ही पा लें परन्तु वे उसके पास पहुँच नहीं सकते और जो लोग दूर रह कर उसके रूप-गुण पर मुग्ध होंगे, वे चारु को धन्यवाद दिये बिना न रहेंगे।

लेकिन इस समय चारुशशि यह सोच रही थी कि ऐसा आश्चर्यजनक, दुर्लभ एवं देवलब्ध ब्राह्मण बालक सोनामणि को किस प्रकार सहज ही प्राप्त हो गया। यदि हम लोग इसे इतने यत्न-पूर्वक न लाते, इतने यत्न पूर्वक न रखते तो सोनामणि उसे कहाँ से

देख पाती ? वह सोनामणि का भैया है, यह सुनकर तो सम्पूर्ण शरीर में आग सी लग जाती है ।

जिस ताराचंद के प्रति चारुशशि मन ही मन द्वेष रखती थी और उसे जर्जर करने करने की कोशिश में लगी रहती थी । उसी के एकाधिकार को लेकर हृदय में ऐसा प्रबल उद्वेग क्यों हुआ—इस रहस्य को भला कौन जान जकता है ?

उसी दिन इसी एक साधारण सी बात पर सोनामणि के साथ चारुशशि की कुट्टी हो गई और उसी समय वह ताराचंद की कोठरी में जाकर उसकी प्रिय बाँसुरी को निकाल कर, उस पर कूदती हुई, निर्दयता पूर्वक उसे तोड़ने तथा कुचलने का उपक्रम करने लगी ।

जिस समय चारुशशि प्रचण्ड आवेग से उस बांसुरी–विध्वन्स कार्य में संलग्न थी, ठीक उसी समय ताराचंद कहीं से अपनी कोठरी में आकर प्रविष्ट हुआ । वह बालिका की इस प्रलयंकारिणी मूर्ति को देख कर दंग रह गया । बोला—"चारु मेरी बाँसुरी को इस प्रकार क्यों तोड़ रही हो ? यह सुनकर 'तोड़ूँगी, फिर तोड़ूँगी'—कहती हुई चारु दो–चार बार उस पर छिन्न–विछिन्न अनावश्यक पदाघात करके, उच्च्वसित कंठ से रोती हुई कोठरी से निकल कर बाहर भाग गई । ताराचंद ने बाँसुरी को उलट–पलट कर देखा कि उसमें अब कुछ सार नहीं रहा है । वह इस निरपराध और पुरानी बाँसुरी की ऐसी दुर्गति देखकर, अपनी हँसी न रोक सका । दिन प्रति दिन चारु उसके लिये अधिक से अधिक कौतूहल का विषय बनती चली जा रही थी ।

ताराचंद के लिये वे चित्रों वाली पुस्तकें, जो मोतीलाल बाबू के पुस्तकालय में रक्खीं थीं, एक और कौतूहल की वस्तु थीं । वह बाहरी दुनियाँ से काफी परिचित हो चुका है, परन्तु चित्रों के

संसार में वह किसी प्रकार भी प्रवेश नहीं कर पा रहा है । अपने हृदय में वह कल्पना द्वारा बहुत कुछ पूर्ति कर लिया करता है, परन्तु उससे हृदय की अतृप्त नहीं मिट पाती ।

एक दिन मोतीलाल बाबू ने ताराचंद का चित्रोंवाली पुस्तकों से लगाव देख कर कहा—"अँग्रेजी पढ़ोगे ? तभी तुम उन सब चित्रों का अर्थ समझ सकोगे ।"

ताराचंद उसी क्षण बोल उठा—"पढ़ूँगा ।"

मोती बाबू को यह सुनकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई । उन्होंने उसी समय स्कूल के हैडमास्टर रामरतन बाबू को बुला कर शाम को रोज ताराचंद को अँग्रेजी पढ़ाने का भार सौंप दिया ।

५

ताराचंद अपनी तीक्ष्ण स्मरण शक्ति एवं अत्यन्त उत्साह के साथ अँग्रेजी का अध्ययन करने में जुट गया । मानो वह पुरानी दुनियाँ से अपना सम्बन्ध विच्छेद करके किसी नये दुर्गम राज्य में भ्रमण करने निकला हो । अब उसे मुहल्ले के लोग देख ही नहीं पाते थे । सायंकाल जब वह नदी-तट पर एकान्त में शीघ्रता से टहलता हुआ पाठ याद करता, तब उसका उपासक बालक सम्प्रदाय दूर से ही आदर के साथ उसका निरीक्षण करता रहता । उसके अध्ययन में बाधा डालने का साहस नहीं करता ।

चारु भी अब उसे अधिक नहीं देख पाती थी । ताराचंद पहले अन्तःपुर में जाकर अन्नपूर्णा की स्नेह-दृष्टि के सम्मुख बैठकर भोजन करता था, परन्तु इसमें कभी-कभी उसे देर हो जाया करती थी, इस कारण उसने मोती बाबू से कह कर अपने खाने का प्रबन्ध बाहर ही करा लिया । अन्नपूर्णा ने इस पर व्यथित होकर आपत्ति की, परन्तु मोती बाबू ने ताराचंद की पढ़ाई के उत्साह

से प्रसन्न होकर, इस नई व्यवस्था को स्थिर रखना ही उचित समझा।

चारु भी एक दिन अँग्रेजी सीखने के लिये जिद्द कर बैठी। पहले तो उसके माता–पिता ने अपनी जिद्दी लड़की के इस प्रस्ताव को परिहास का विषय समझकर स्नेह-स्निग्ध हँसी में उड़ा दिया, परन्तु जब चारु ने उक्त प्रस्ताव के परिहास के अँश को रो–रो कर आँसुओं से धोकर साफ कर दिया, तब विवश होकर उन्हें उसके गम्भीर भावों को स्वीकार करना पड़ा। चारु भी उन्हीं मास्टर के पास ताराचंद के साथ पढ़ने लगी।

परन्तु इस चंचल बालिका के भावानुकूल पढ़ना–लिखना न बैठा। उसने स्वयं तो कुछ सीखा नहीं, उल्टे ताराचंद की पढ़ाई में भी बाधा पहुँचाने लगी। वह पढ़ाई में पीछे रह जाती, अपना पाठ याद नहीं कर पाती, फिर भी ताराचंद से किसी भी भाँति पीछे नहीं रहना चाहती। यदि ताराचंद उसे छोड़कर नया पाठ पढ़ना चाहता तो वह क्रोधित हो उठती, यहाँ तक कि रोना आरम्भ कर देती। ताराचंद पुरानी किताब समाप्त करके नई लाता तो उसके लिये भी नई किताब खरीदनी पड़ती। अवकाश के समय ताराचंद अपने कमरे में बैठा लिखता एवं पाठ याद किया करता था, यह भी उसे ईर्षावश सहन नहीं होता। वह छिप कर उसके कमरे में जाती और कापी पर स्याही फैला कर कलम छिपा देती। यहाँ तक उसके पढ़ने की पुस्तक के पन्ने भी फाड़ आती। ताराचंद इस बालिका के उपद्रवों को कौतूहल के साथ सहन करता परन्तु कभी–कभी असह्य होने पर मार भी बैठता। फिर भी, वह उसे काबू में न ला सका।

अचानक एक दिन एक उपाय निकल आया। ताराचंद अत्ययन्त क्रोधित एवं निराश होकर अपनी स्याही पड़ी कापी को फाड़-

फूड़कर चुपचाप बैठा था। दरवाजे के पास आते ही चारु समझ गई कि आज उस पर मार पड़ेगी, परन्तु उसकी आशा की पूर्ति न हुई। ताराचंद उससे कुछ न कह कर, उसी प्रकार शान्त बैठा रहा। लड़की कमरे के अन्दर और बाहर इधर से उधर घूमती--फिरती रही। बार--बार उसके इतने पास पहुंच जाती कि यदि ताराचंद चाहता तो बड़ी आसानी से उसकी पीठ पर थप्पड़ जमा सकता था, परन्तु वह ऐसा न करके चुपचाप ही बैठा रहा। इससे चारु को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने जीवन में इसका कभी अनुभव नहीं किया था कि, क्षमा कैसे माँगी जाती है। परन्तु उसका छोटा सा व्याकुल हृदय अपने सहपाठी से क्षमा माँगने के लिये आग्रह करने लगा। अन्त में कोई अन्य उपाय न देखकर उसने फटी हुई कापी का एक टुकड़ा उठा कर उस पर लिखा—'मैं अब तुम्हारी कापी पर कभी भी स्याही नहीं डालूँगी।' यह लिखकर वह उस पर ताराचंद की दृष्टि आकृष्ट करने के लिये अनेकों प्रयत्न करने लगी। यह देखकर ताराचंद अपनी हँसी न रोक सका। चारु उस समय लज्जा और क्रोध के मारे पागल सी हो उठी तथा शीघ्रता पूर्वक कमरे से बाहर भाग गई। वास्तव में, जिस कागज के टुकड़े पर उसने अपने हाथ से जो भाव प्रकट किये हैं, उसे अनन्तकाल एवं इस अपार संसार से लुप्त करने के पश्चात् ही उसके हृदय का क्षोभ मिट सकता था।

इधर संकुचित हृदय सोनामणि दो--एक दिन अध्ययन के कमरे के बाहर से झांक--झांक कर चली गई है। उसकी सहेली चारुशशि के साथ उसका अन्य सभी विषयों में विशेष स्नेह था; परन्तु ताराचन्द के सम्बन्ध में वह चारु को अत्यन्त भय एवं सन्देह मिश्रित दृष्टि से देखने लगी थी। जिस समय चारु अन्दर वाले मकान में रहती, उस समय सोनामणि बड़े संकोच से ताराचंद के

पास आकर खड़ी हो जाती । ताराचंद अपनी पुस्तक से पृष्ठ उठा कर स्नेह के साथ पूछता"क्यों सोना, क्या खबर है ? मौसी तो भली प्रकार हैं ?"

सोना उत्तर देती—"तुम बहुत दिनों से वहाँ गये नहीं । तुम्हें माँ ने बुलाया है । माँ की कमर में दर्द है । इसी कारण वे यहाँ नहीं आ सकीं ।"

इतने में सहसा चारु आ पहुंचती । सोनामणि यह देखकर घबरा जाती, मानो वह अपनी ही सखी की सम्पदा छिपकर चुराने आई है । चारु अपने कंठ को तेज करके आँख-मुँह घुमाकर कहती–क्यों सोना, तू यहाँ पढ़ने के समय शोर मचाने आई है ? मैं बापू से जाकर अभी कहती हूँ " जैसे वह स्वयं ताराचंद की एक बहुत बड़ी शुभचिन्तिका हो, तथा रात-दिन इसी चिन्ता में रहती हो कि ताराचन्द की पढ़ाई में किसी भी भाँति जरा भी कोई विघ्न न पड़ने पाये । परन्तु, वह स्वयं इस समय ताराचन्द के पढ़ने के कमरे में किस इरादे से आई थी, यह भगवान ने छिपा रक्खा था तथा ताराचन्द भी उससे भली भाँति परिचित था । परन्तु सोनामणि बिचारी डर कर उसी क्षण अनेक झूठी-झूँठी बातें गढ़ना शुरू कर देती । अन्त में जब चारु उसे घृणा से 'झूँठी कहीं की' कह कर सम्बोधित करती, तब वह लज्जित, शंकित हार मानकर, व्यथित हृदय से अपने घर लौट जाती । तब कोमल हृदय ताराचन्द उसे बुलाकर कहता—"सोना अच्छा, आज शाम को मैं तुम्हारे घर आऊँगा ।" चारु यह सुनकर सर्पिणी की भाँति फुसकार कर कहती—'हाँ, हाँ, वहाँ क्यों नहीं जाओगे । तुम्हें पाठ थोड़े ही याद करना हैं । मैं मास्टर साहब से सब कुछ कह दूँगी ।"

ताराचन्द चारु के इस शासन से भयभीत न होकर दो--एक दिन शाम को अपनी मिसरानी मौसी के घर गया था। चारु ने तीसरी या चौथीबार खोखला शासन न करके, चुपचाप उसके कमरे के दरवाजे की साँकल बन्द कर दी तथा रसोई घर से लाकर ताला भी लगा दिया। निरंतर कई घन्टे बन्द रखने के पश्चात् अन्त में शाम बीत जाने पर जब भोजन का समय हुआ तो चारु ने दरवाजा खोल दिया। क्रोधावस्था में भी ताराचन्द शान्त ही रहा तथा बिना कुछ खाये--पिये ही जाने के लिये तैयार हो गया। तब अनुतप्त व्यथित बालिका बड़ी विनय के साथ हाथ जोड़कर बार-बार कहने लगी 'मैं तुम्हारे पाँव पड़ती हूँ, अब कभी ऐसा नहीं करूँगी। तुम खा कर जाओ। " ताराचन्द, जब इस प्रकार भी वश में न आया तो अधीर होकर उसने रोना शुरू कर दिया। अंत में, ताराचंद धर्मसंकट में पड़कर खाना खाने बैठ गया।

चारु ने कई बार एकाग्रचित्त होकर प्रण, किया है कि वह ताराचंद के साथ अच्छा व्यवहार करेगी तथा कभी एक क्षण के लिये भी उसे परेशान न करेगी, परन्तु सोनामणि आदि पाँच अन्य लोगों के बीच में जाने उसका मिजाज कैसा हो जाता है, उस समय उसका कोई वश नहीं चलता। जब वह निरन्तर कई दिनों तक अच्छी प्रकार से व्यवहार करने लगती, तब ताराचंद, किसी एक भावी उत्कृष्ट विप्लव के लिये सावधानी से तैयार होने लगता। क्योंकि यह कुछ भी नहीं कहा जा सकता कि आक्रमण कब, किस बात पर तथा किस ओर से होगा। उसके पश्चात् तेज आँधी, आँधी के पश्चात् जोर की वर्षा, तदुपरान्त प्रसन्न निर्मल शान्ति यही क्रम चलता रहता था।

६

इसी प्रकार लगभग दो वर्ष व्यतीत हो गये। ताराचंद

इतने लम्बे समय तक कहीं भी नहीं रुका था। शायद उसका मन पढ़ने-लिखने में किसी अपूर्व आकर्षण से बंध गया था, शायद अवस्था के साथ-साथ उसकी प्रकृति में भी परिवर्तन आरम्भ हो गया था अथवा शायद उसका मन स्थाई रूप में कहीं एक स्थान पर रह कर, सांसारिक सुख, स्वच्छन्दता, भोगने की ओर झुक रहा था, इसके अतिरिक्त शायद उसके साथ पढ़ने वाली बालिका का नित्य का उपद्रव तथा चंचल सौन्दर्य अज्ञात रूप से उसके हृदय पर जाल फैला रहा रहा हो, तो भी कोई आश्चर्य नहीं है।

चारु की अवस्था इधर ग्यारह पार करना चाहती है। मोती बाबू ने काफी खोज कराने के पश्चात् दो-तीन अच्छे-अच्छे सम्बन्धों की बातचीत आरम्भ कीं। उन्होंने लड़की की अवस्था देखकर उसका अँग्रेजी पढ़ना तथा बाहर निकलना बन्द करा दिया। इस आकस्मिक रुकावट से चारु ने घर के अन्दर एक बड़ा भारी आन्दोलन खड़ा कर दिया।

तब एक दिन अन्नपूर्णा ने मोती बाबू को बुलाकर कहा—'तुम लड़के के लिये इतने परेशान क्यों हो रहे हो? ताराचन्द भी तो अच्छा लड़का है। वह तुम्हारी लड़की को भी पसन्द है।

मोती बाबू ने यह सुनकर अत्यन्त आश्चर्य प्रगट करते हुये कहा—'यह कैसे सम्भव हो सकता है? ताराचन्द के कुल-शील का भी तो कुछ पता नहीं। मेरी यही एक मात्र लड़की है। मैं इसे किसी अच्छे घर में देना चाहता हूँ।"

एक दिन रायडंगा के जमींदार की ओर से कुछ लोग लड़की देखने आये। चारु को पहना उढ़ा कर बाहर लाने का बहुत प्रयत्न किया गया, परन्तु वह किसी प्रकार बाहर न निकली, अपितु अपने कमरे का दरवाजा बन्द करके अन्दर ही बैठी रही। मोतीबाबू ने

कमरे के बाहर से बहुत समझाया-मनाया तथा अन्त में फटकार भी बताई, परन्तु सब व्यर्थ ही रहा। अन्त में मोती बाबू को निराश होकर बाहर जाकर रायडंगा से आये हुए लोगों को झूँठ मूँठ कहना पड़ा कि लड़की की तबीयत अचानक खराब हो गई है, इसलिये आज उसे बाहर नहीं लाया जा सकेगा। बस उन लोगों ने समझ लिया कि लड़की में अवश्य कोई दोष है, इसीलिये यह बात बनाई गई है।

मोती बाबू तब ताराचन्द के विषय में सोचने लगे—'लड़का अच्छा है, उसे अपने घर में ही रखा जा सकता है, इस प्रकार लड़की को पराये घर नहीं जाना पड़ेगा। उन्होंने यह भी विचार कर देखा कि उनकी अशान्त और अबाध्य लड़की की शरारतें उनकी स्नेह दृष्टि में भले ही क्षम्य हो, परन्तु सुसराल में उन्हें कोई सहन नहीं करेगा।

इसके पश्चात्, इस विषय में अन्नपूर्णा से भी उनकी बहुत सी बातें हुईं। अन्त में यह निश्चय किया गया कि ताराचन्द के गाँव में आदमी भेज कर, उसके कुल के विषय में पता लगाया जाय। आदमी भेजा गया और पता लगाकर आया। उसने बताया वंश अच्छा हैं, परन्तु धन का अभाव है। तब मोती बाबू ने लड़के की माँ तथा भाइयों के पास विवाह का प्रस्ताव भेजा। ताराचंद के घर वाले मारे प्रसन्नता के फूले न समाये। उन्होंने तुरंत ही अपनी सम्मति दे दी।

कटहलिया में लड़की के माता-पिता विवाह का शुभ दिन छँटवाने लगे। परंतु मोती बाबू ने यह भेद किसी अन्य पर प्रगट नहीं होने दिया।

सब से बड़ी परेशानी यह हुई कि चारु को घर के अन्दर रोक कर नहीं रखा जा सका। वह बीच-बीच में आँधी के समान

बाहर ताराचंद के कमरे में पहुँच ही जाती थी। वह कभी-कभी प्रेम एवं कभी क्रोध पूर्ण बातें कह कर, ताराचंद की शांति तथा पठन-पाठन में ऐसा विघ्न उपस्थित कर देती कि वह बेचारा परेशान हो उठता। इतना सब कुछ होते हुए भी आजकल एक नई बात यह उत्पन्न हुई कि इस निर्लिप्त मुख्य स्वभाव ब्राह्मण बालक के हृदय में कभी-कभी क्षण भर के लिये विद्युत् स्पन्दन की भाँति एक अपूर्व चान्चल्य का संचार होने लगता था। जिस बालक का हलका मन सदैव से अव्याहत रूप से काल स्रोत की तरंगों के साथ सामने की ओर बहता चला जाता था, वह आजकल कभी-कभी अन्यमनस्क होकर एक विचित्र दिवास्वप्न के जाल में फँसा जाता था। वह किसी-किसी दिन पढ़ना-लिखना छोड़कर मोती बाबू के पुस्तकालय से लाकर चित्रों वाली पुस्तकों के पृष्ठ उलटने लगता। उन चित्रों के मिश्रण से जिस कल्पनालोक की सृष्टि होती, वह पहिले से बिलकुल अलग तथा अधिक रंगीन होता। वह चारु के अद्भुत व्यवहार पर अब पहिले की भांति परिहास नहीं करता था, तथा ऊधम मचाने पर उसे मारने का विचार हृदय में नहीं उठाता था अपने में यह परिवर्तन एवं आबद्ध आसक्त भाव स्वयं उसी को एक नये स्वप्न की भाँति प्रतीत होने लगा।

मोती बाबू ने सावन में विवाह का शुभ दिन निश्चित करके ताराचंद की मां तथा भाइयों को लाने के लिये आदमी भेज दिया परंतु यह बात ताराचंद पर प्रकट न होने दी। फिर उन्होंने अपने कलकत्ता के कार्यालय को चीजों की लम्बी लिस्ट भेज दी तथा यह लिख दिया कि फौजी बैण्ड बाजे की व्यवस्था की जानी चाहिये।

७

आकाश में वर्षा ऋतु के बादल छा गये। गाँव की नदी अब तक सूखी सी पड़ी थी। बीच-बीच में गड्ढों में कहीं-कहीं

पानी जमा था। उस गंदे पानी में छोटी-छोटी नावें डूबी पड़ी थीं तथा शुष्क नदी की बालू पर बैलगाड़ियों के पहियों की लकीरों के चिह्न पड़ गये थे। इतने में एक दिन मायके से लौटी हुई पत्नी की भांति गाँव की सूखी छाती में न जाने कहाँ से तेज जलधारा आ पहुँची। देखते-देखते गांव का नदी तट बालक-बालिकाओं से घिर गया। बच्चे पानी देखकर खुशी के मारे नाचने तथा पानी में घुस-घुस कर नहाने लगे। झोंपड़ियों में रहने वालियों का समूह अपनी प्रिय-सखियों को देखने के लिये बाहर निकल आया। शुष्क निर्जीव गाँव को मानो किसी एक प्रबल प्राण-वायु ने जगा दिया। छोटी-बड़ी भिन्न-भिन्न प्रकार की नावें आने-जाने लगीं। नदी माझी-मल्लाहों के गीतों से मुखरित हो उठी। दोनों तटों के गाँवों में जो साल भर से अब तक शांत अपने-अपने रोजगार के काम में व्यस्त थे, एक प्रकार के अपूर्व आंदोलन का संचार हो उठा।

इन्हीं दिनों में कुण्डलकूटि के नाग बाबुओं के इलाके में रथ यात्रा का प्रसिद्ध मेला लगता था। एक दिन, दिन छिपने के पश्चात् चांदनी से चमकते हुये घाट पर आकर ताराचंद ने देखा कि किसी नाव में सौदागर, किसी नाव में नाटक मंडली वाले, किसी नाव में बाजे वाले, किसी नाव में कलकत्ते की सरकस पार्टी वाले जोर-जोर से गाते-बजाते मेले के लिए चले जा रहे हैं। ताराचंद का मन यह देखते ही एक अपूर्व उत्साह से भर उठा। इतने में पूर्व दिशा से घने मेघों ने आकर नदी के ऊपर मानो काला चूँदोवा सा तान दिया। चाँद छिप गया, पुरवइया हवा तेजी से चलने लगी, नदी का पानी कलकल स्वर में हँस उठा तथा नदी तट की आंदोलित वन-श्रेणी में अन्धकार छा गया, मेढ़क बोलने लगे तथा झींगुरों ने अपनी झङ्कार की आरी से अन्धकार को चीरना आरंभ कर दिया। ताराचंद के सम्मुख आज विश्वव्यापी रथ यात्रा प्रारम्भ हो गई।

रथ के पहिये घूमने लगे, ध्वजा हवा में फहराने लगी, पृथ्वी कंपित हो उठी, वायु दौड़ने लगी, नदी प्रवाहित होने लगी, नाव चलने लगीं, तथा बाजे बजने लगे । देखते-देखते बादल गरज उठे, बिजली चमकने लगी दूर तक फैले हुये अन्धकार में से मूसलाधार वर्षा की गन्ध आने लगी । केवल नदी-तट का एक कटहलिया गाँव ही अपने दीप बुझा कर शांत सोता रहा ।

दूसरे दिन प्रातः ही ताराचंद की मां एवं भाई आदि कट-हलिया आ पहुँचे । उनके साथ-साथ सामान से भरी हुई तीन बड़ी बड़ी नावें भी कलकत्ते से आ पहुँचीं ।

उसी दिन प्रातः सोनामणि एक दौने में थोड़ा सा अचार तथा दूसरे दौने में अमावट लेकर डरती हुई ताराचंद के कमरे के दरवाजे के पास चुपचाप आ खड़ी हुई । परंतु ताराचंद वहां दिखाई नहीं दिया । स्नेह, प्रेम, मैत्री का षडयंत्र-बंधन उस ब्राह्मण बालक को अच्छी भांति बांधने भी न पाया था कि उसके पूर्व ही वह सारे गांव का हृदय चुराकर, उस मेघों से आच्छादित अन्धकार पूर्ण वर्षा की रात्रि में आसक्तिहीन विश्व की विशाल गोद में कहाँ जा छिपा—इसे कोई भी नहीं जान सका ।

राजकुमारी

१

रणभूमि अल्लाहो अकबर के नारों से गूँज उठी। एक ओर तीस लाख मुगल सैन्य है, दूसरी ओर तीस हजार आर्य सैनिक। हिन्दू योद्धागण सारी रात एवं दिनभर युद्ध करते हुए बाढ़ के बीच में अकेले पीपल के वृक्ष के समान अटल खड़े थे, परन्तु अब हार जाने के लक्षण दिखाई दे रहे हैं। इस पराजय के साथ ही भारत की विजय-पताका भूमि पर गिर पड़ेगी। भारत का गौरव-सूर्य आज के इस अस्ताचलवर्ती सूर्य के साथ ही अस्त हो जायगा।

हर हर महादेव! पाठक बता सकते हैं—कौन है वह गर्वित वीर युवक, जो केवल पैंतीस साथियों के साथ हाथ में नङ्गी तलवार लिये घोड़े पर सवार हो, भारत की अधिष्ठात्री देवी के हाथ से छोड़े गये प्रचंड वज्र की भाँति शत्रुओं की सैना पर आ टूटा? बता सकते हो किसके प्रताप से यह असंख्य मुगल सैना उस प्रचंड तूफान से घायल जंगली वृक्षों की भाँति घबरा उठी है? किसके वज्र-कण्ठ से उद्‌घोषित 'हरहर महादेव' नाद से तीन लाख म्लेच्छकण्ठ का 'अल्लाहो अकबर' का नारा आसमान में ही विलुप्त हो गया है? किसकी चमकती हुई तलवार के सम्मुख व्याघ्र से आतंकित भेड़ के बच्चे के समान शत्रु-सैना क्षणभर में ही दुम

दबाकर भागने लगी ? बता सकते हैं, उस दिन के आर्य स्थान के सूर्यदेव अपने सहस-रक्त-कर-स्पर्श से किसकी रक्त की डूबी हुई तलवार को आशीर्वाद देकर अस्ताचल पर विश्राम करने गये थे ? बता सकते है पाठक, यही हैं वे काशी के सेनापति, भारत इतिहास के ध्रु-नक्षत्र ललितसिंह ।

२

काशी नगर में आज क्यों इतना उत्सव मनाया जा रहा है ? राजप्रसाद की चोटी पर विजय-पताका क्यों इतनी चंचल हो उठी है ? सिर्फ वायु के जोर से ? नहीं, नहीं, आनन्द की उमंग से । द्वार-द्वार पर कदलीवृक्ष तथा मंगलघट रखे हुए हैं । घर-घर में जयध्वनि गूँज रही हैं । मार्ग-मार्ग पर दीपक प्रकाश कर रहे हैं । नगर के चारों ओर, यहाँ तक कि प्राचीरों पर भी लोगों की भीड़ जमी हुई है । पाठक जानते है, नगर के लोग इतनी उत्सुकता से किसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं ?

एकाएक पुरुष–कण्ठ की जयध्वनि एवं नारी–कण्ठ की हर्षध्वनि–दोनों एक साथ मिलकर आकाश को भेदती हुई नक्षत्र लोक की ओर चली गईं । आकाश के समस्त तारागण वायु के झोकों से काँपती हुई दीपक की लौ की भाँति काँपने लगे ।

उसे पहिचानना, वह जो मस्त घोड़े पर सवार वीर–पुरुष नगर द्वार से प्रवेश कर रहा है । हाँ यही हमारे पूर्व परिचित काशी के सेनापति ललितसिंह हैं । ये शत्रुओं को पराजित कर अपने प्रभु काशी नरेश के चरणों में शत्रु-रक्त-रंजित तलवार भेंट करने आये हैं । आज इसीलिये यह इतना उत्सव है ।

परन्तु सेनापति का उस ओर बिल्कुल भी ध्यान नहीं, जहाँ इतनी जयध्वनि हो रही है उनकी दृष्टि उन पुरुष-नारियों

तक नहीं जाती, जो झरोखों से पुष्पवृष्टि कर रहे हैं। प्यासा-पथिक बन मार्ग से अब सरोवर की ओर दौड़ता है, तब यदि उसके सिर पर सूखे पत्ते झर-झर कर गिरने हों तो क्या वह उस ओर ध्यान नहीं देता है ? यह विपुल सम्मान अधीर चित्त ललितसिंह को उन्हीं सूखे पत्तों के समान नीरस, हल्का एवं अत्यंत साधारण-सा प्रतीत हुआ।

अन्त में, घोड़ा जब अन्तःपुर के प्रासाद के सम्मुख पहुँचा तब सेनापति ने क्षण भर के लिये हाथ की लगाम खींची। घोड़ा उसी क्षण ठिठक कर खड़ा हो गया। ललितसिंह ने एक बार प्रासाद के झरोखे की ओर अतृप्त-नेत्रों से देखा कि दो लज्जा से झुके हुए नेत्र एक विद्युत की भाँति उनके मुख पर पड़े तथा दो आनन्दित बाहुओं से फेंकी गई एक पुष्प माला ऊपर से उनके सामने भूमि पर आ गिरी। उन्होंने उसी क्षण घोड़े से उतर कर उस पुष्पहार को उठाकर अपने मुकुट से स्पर्श कराया तथा एक बार कृतज्ञ दृष्टि से ऊपर की ओर देखा। झरोखे का द्वार बंद हो चुका था, दीपक ज्योति समाप्त हो चुकी थी।

३

जो सहस्त्रों शत्रुओं के सम्मुख विचलित नहीं हुआ था वह मृग नेत्रों के सम्मुख पराजित हो गया। सेनापति बहुत दिनों से पत्थर के किले की भांति हृदय में धैर्य की रक्षा करते आये थे। कल सायंकाल की बात है दो काले-काले नेत्रों की सम्मानयुक्ति सलज्ज दृष्टि ने किले की नींव पर चोट की तथा इतने दिनों का धैर्य क्षणभर में धूलि धूसरित हो गया। लेकिन सेनापति, इससे क्या तुम्हें संध्या के अंधकार में चोरों की भांति राज अंतःपुर के उद्यान की दीवार लाँघनी थी ? तुम परम विजयी वही वीर पुरुष हो। छीः छीः।

परंतु जो उपन्यास लिखता है, उसके लिये कहीं भी कोई रुकावट नहीं। द्वारपाल नहीं रोकते, उसे सुन्दर रमणियों की ओर से भी कोई आपत्ति नहीं होती। इसलिये इस सलोनी बसंत-संध्या में दक्षिण वायु वीजित राजअंतःपुर के निर्जन उद्यान में एक बार प्रवेश करना चाहिये। हे पाठकगण एवं पाठिकाओं, मैं तुम्हें अभय दान देता हूँ, यदि इच्छा हो तो तुम भी मेरे पीछे-पीछे आ सकते हो।

एक बार देखो तो संध्या तारा की प्रतिमा के समान बकुल वृक्ष के नीचे ही तृण-शय्या पर वह रमणी कौन है? हे पाठक-पाठिकाओ, तुम्हें कुछ मालूम है? क्या तुमने कहीं ऐसा रूप देखा है? क्या इस रूप का किसी प्रकार वर्णन किया जा सकता है? क्या भाषा कभी किसी मंत्र बल से ऐसे जीवन-यौवन एवं लावण्य से भर सकती है? हे पाठको, यदि तुम्हारा दूसरा विवाह हुआ हो तो अपनी स्त्री के मुख की याद करो! हे सुन्दरी पाठिकाओ, तुमने जिस ज्योति को देखकर अपनी संगिनी से कहा हो—'यह बहिन, यह ऐसी क्या देखने में अच्छी है, हां, कुछ सुन्दर है, इससे क्या, परन्तु वह बात नहीं' उसके मुख की याद करो। उस वृक्ष के नीचे बैठो, राजकुमारी के साथ उसकी कुछ समानता पाओगी। पाठक एवं पाठिकाओ, अब पहिचाना? यही है राजपुत्री विद्युन्माला।

राजकुमारी गोद में फूल रखकर सिर झुकाये हुए माला गूँथ रही हैं। उगलियां गूँथते-गूँथते एक बार अपने सुन्दर कार्य में शिथिलता ला रही हैं। उदासीन दृष्टि किसी एक अत्यन्त दूरवर्ती चिंता-राज्य में भ्रमण कर रही है। राजकुमारी क्या सोच रही हैं।

परंतु हे पाठको! मैं इस प्रश्न का उत्तर नहीं दूँगा। राजकुमारी के एकांत हृदय-मंदिर के अन्दर आज न जाने इस निस्तब्ध संध्या में किसकी आरती हो रही है? हम वहाँ अपवित्र

कौतूहल लेकर प्रवेश नहीं कर सकते । वह देखो एक दीर्घ निश्वास पूजा की धूप के सुगन्धित धुँए की भांति हवा में विलीन हो गया तथा दो अश्रु-बूँदें दो सुकोमल कुसुम कोर के समान अव्यक्त देवता के चरणों पर झर पड़ीं ।

राजकुमारी सहसा भय से चीख पड़ी । चारों ओर से रक्षक दौड़े आये, तथा अपराधी को बन्दी बना दिया । जब राजकुमारी होश में आई तो पता चला कि सेनापति बन्दी बना लिये गये हैं ।

४

विधान में इस अपराध का प्राण-दंड है, पर सेनापति के पूर्व उपकार को ध्यान में रखते हुए राजा ने उन्हें निर्वासित करके छोड़ दिया । सेनापति ने मन ही मन कहा—'देवि, जब तुम्हारे नेत्र धोखा दे सकते हैं तो संसार में सत्य कहीं भी नहीं । आज मैं मानव जाति का शत्रु हूँ । ललितसिंह तब से एक बड़े विशाल दलबल के अधिपति के रूप में जंगल में रहने लगे ।

हे ! पाठकगण हम-तुम जैसे आदमी इस घटना पर क्या करते ? अवश्य ही जहाँ निर्वासित होते, वहाँ अन्य नौकरी की तलाश करते या एक नया अखबार निकाल लेते-इसमें सन्देह नहीं । उसमें अनेक मुसीबतों का सामना करना पड़ता । सेनापति जैसे महापुरुष जो उपन्यासों में सुलभ एवं दुनियां में दुर्लभ हैं, वे न तो नौकरी ही करते हैं और न अखबार ही निकालते हैं । जब वे सुख से रहते हैं तब एक सांस में समस्त विश्व का उपकार करते हैं तथा मनो-कांक्षा के तनिक भी व्यर्थ होते ही आरक्त नेत्रों से कहते हैं—'दानवी, दुनियां, पिशाच समाज, मैं तेरी छाती पर पैर रखकर बदला लूँगा ।' तथा उसी क्षण वे डाकुओं के सरदार बनकर अपना कार्य आरंभ कर देते हैं । अंग्रेजी काव्यों में ऐसा पढ़ने को मिलता है तथा राजपूतों में भी यह प्रथा अवश्य ही प्रचलित थी ।

देश की जनता डाकुओं के उपद्रव से भयभीत हो उठी। पर यह असाधारण डाकू बेसहारों के सहायक दीनों के भाई तथा कमजोरों के शरण होते हैं। वे केवल धनी, उच्चकुल के सम्मानित व्यक्ति तथा राज कर्मचारियों के लिये अवश्य ही काल के समान हैं।

घना वन है, सूर्य अस्त होने वाला है। वृक्षों की छाया के कारण अकाल रात्रि का आविर्भाव हुआ है। एक नवयुवक अपरिचित मार्ग से अकेला जा रहा है। उसका कोमल शरीर कठिन परिश्रम से थक गया है, परन्तु फिर भी उसमें असीम उत्साह एवं दृढ़ता है। उसकी कटि में जो तलवार लटक रही है, इस समय उसे उसका भार भी असह्य मालूम पड़ रहा है। बन में थोड़ा सा शब्द होते ही वह भयभीत हिरण की भाँति चौंक उठता है, परन्तु फिर भी वह सामने आने वाली रात्रि तथा अपरचित जंगल में से दृढ़ संकल्प के साथ अग्रसर हो रहा है।

डाकुओं ने अपने सरदार से आकर कहा—महाराज, आज एक बहुत बड़ा शिकार हाथ लगा है। उसके सिर पर मुकुट है, कटि में तलवार है, राजाओं का सा भेष है।'

सरदार ने कहा—'तुम सब यहीं रहो, वह शिकार मेरा है।'

पथिक ने चलते-चलते एक बार सहसा सूखे पत्तों की आवाज सुनी। वह चौंक कर चारों ओर देखने लगा।

सहसा उसके वक्ष में आकर एक तीर घुस गया और वह 'माँ' कहकर पृथ्वी पर गिर पड़ा।

सरदार ने पास जाकर घुटनों पर झुककर घायल के मुँह की ओर देखा। भूमि पर पड़े हुए पथिक ने डाकू का हाथ पकड़ कर केवल एक बार मृदु-स्वर में कहा—'ललित।'

डाकू के हृदय के क्षण भर में सहस्रों टुकड़े हो गये। एक हाहाकार भरा चीत्कार उठा—'राजकुमारी।'

सब डाकुओं ने आकर देखा, शिकार और शिकारी अन्तिम आलिंगन में मरे पड़े हैं।

एक दिन संध्या के समय राजकुमारी ने अनजान में अपने अन्तःपुर के उद्यान में, ललित पर राजदंड छोड़ा था। और एक दिन संध्या समय वन में अज्ञान से राजकुमारी पर तीर छोड़ा ललित ने। संसार में यदि कहीं भी दोनों का मिलन हुआ हो तो आज दोनों ने एक दूसरे को शायद क्षमा कर दिया होगा।